वर्ष ६, अंक ५

श्रीकृष्णाय नमः

मार्गशीर्ष १९९१

मार्च

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो वंश और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये, जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई मधुआ जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	११)
सूबेदार मेजर दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		१२७
२.	पुराण गाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी		१२८
३.	तुम्हारी ओर [ले० श्री बी. एल. सराफ, बी. ए., एल एल. बी.		१३२
७.	बाल केली (कविता) [ले० श्रीमती सत कुमारी 'प्रभाकर" आश्रम		१३५
६.	षट् प्रमाण संग्रह [ले० श्री महात्मा राम आश्रम		१३६
७.	माया [ले० श्री यमुना प्रसाद श्री वास्तव		१३६
८.	वह (कविता) [ले० श्री लक्ष्मी प्रशाद मिस्त्री 'रमा'		१४३
६.	बसन्त [ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी "विशारद" आश्रम		१४४
१०.	कुछ भी नहीं [ले० श्री ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम		१४२
११.	बसन्त (कविता) [ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी 'विशारद' आश्रम		१४६
१२.	योग-साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती		१४७
१३.	ईश्वर प्रार्थना [ले० श्री आत्मानन्द जी सरस्वती		१५९
१४.	जीव गुसांई जी		१५१
१४.	भजन [संग्रहकर्ता हरिराम ब्रह्मचारी आश्रम		१५३

"भक्तिप्रेस" आश्रम, रेवाड़ी

महात्मा सूरदास जी

बांह छुड़ाये जात हौ, निबल जानिकै मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगो मर्द बदौंगो तोहि॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशीर्ष, ता० १ मार्च, १९३५ | अंक ५ पूर्ण संख्या १०१

वेदोपदेश

नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तिर्वभाति देवा अग्निंधारयन्द्रविणोदाम् ॥

दिवारात्रि परस्पर रूपों का बार-बार परस्पर विनाश करके भी ऐक्य भाव से एक ही शिशु (अग्नि) को पुष्ट करते हैं। वह दीप्तमान् अग्नि आकाश और पृथिवी में प्रभा विकसित करते हैं। देवों ने उन धनद अग्नि को दूत नियुक्त किया था।

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥

अग्नि धन-मूल निवास हेतु, अर्थ-दाता, यज्ञ-केतु और उपासक की अभिलाषा के सिद्धि कर्त्ता हैं अमर देवों ने उन धन-दाता अग्नि को दूत बनाया था।

पुराण-गाथा

हिरण्यकशिपु प्रल्हाद संवाद

[ले०-श्री पूज्य मोले बाबाजी]

प्रह्लाद के इस प्रकार के गुण सुनकर शौनक जी अपने मन में बहुत ही प्रसन्न होकर अपना हर्ष प्रकट करते हुए नारद जी से इस प्रकार कहने लगे-

शौनक-हे देवर्षे! आपके मुख से दैत्यपुत्र प्रल्हाद के गुण सुनकर चित्त में बहुत ही आह्लाद होता है। आप का कथन ठीक ही है कि प्रह्लाद के गुण सुनकर करोड़ों संसार से तर चुके हैं, तरते हैं और आगे तरेंगे, क्योंकि इन गुणों को सुनने से चित्त बहुत ही शीघ्र प्रसन्न होता है और निर्मल हो जाता है, निर्मल मन में जनार्दन भगवान् शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं, क्योंकि मलिन मन ही भगवान् के दर्शन न होने में आड है। जो अंतर्यामी केशव भगवान् मलिन मन होने से प्रत्यक्ष नहीं होते, वे ही निर्मल मन में प्रत्यक्ष हो जाते हैं। जैसे मैला दर्पन प्रतिबिम्ब को ग्रहण नहीं कर सका और शुद्ध दर्पण प्रतिबिम्ब को झट ग्रहण करलेता है, इसी प्रकार अशुद्ध मनसे भगवान् दिखायी नहीं देते और शुद्ध मन से छुप नहीं सकते प्रह्लाद के गुण चित्त को शुद्ध और निर्मल बनाने वाले हैं, इसलिये प्रह्लाद के गुण सुनाकर आपने हम पर और आगे होने वाली प्रजापर बड़ा ही उपकार किया है। परोपकार करना साधुओं का स्वभाव ही है, यह कोई नयी बात नहीं है। अब मैं आप से यह सुनना चाहता हूं कि ऐसे परम पावन पुत्र के साथ उसके पिता हिरण्यकशिपु ने द्वेष क्यों किया? क्योंकि अपने अवगुणी पुत्र के साथ ही कोई पिता द्वेष नहीं करता, किंतु उसके अवगुणों की उपेक्षा ही करता है, तब गुणी पुत्र के साथ पिता के द्वेष करने का क्या कारण है। और द्वेष भी ऐसा कि पिता के मरण का कारण हुआ, यह सुनकर आश्चर्य होता है।

नारद-हे शौनक! हिरण्यकशिपु विष्णु भगवान् का द्वेषी था और प्रह्लाद विष्णु भगवान् के परमभक्त थे, पुत्र की भगवद्भक्ति ही पिता के द्वेष का कारण था, इस का वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं। सुनो! शुक्राचार्य दैत्यों के गुरु थे, असुरों ने उनकी पुरोहित स्वीकार करलिया था और उन्होंने भी उनकी पुरोहिताई अंगीकार करली थी। शुक्राचार्य के शंड और अमर्क नाम के दो पुत्र दैत्यराज के महल के पास रहते थे। असुरों के बालकों को राजनीति आदि पढ़ाते थे। राजा ने बालक प्रह्लाद को उनके पास पढने को भेजा। प्रल्हाद परम चतुर था, इसलिये उसने गुरुके कहे हुए को सुनना और सुने हुए का पाठ करना, इसको ठीक न माना क्योंकि जैसा मूढ पुरुषों को दुराग्रह होता है कि यह अपना है और यह पराया है, ऐसा दुराग्रह प्रल्हाद को न था, वह तो सब में एक सच्चिदानन्द परमात्मा को ही

देखता था, ऐसे के लिये अपना पराया कोई होता ही नहीं, इसलिये उसने गुरु के पढ़ाये हुए पर ध्यान न दिया।

हे शौनक! पाठशाला में पढ़ने के लिये भेजने के कुछ दिन पीछे एक दिन असुरराज हिरण्यकशिपु ने पुत्र को गोदी में बैठा कर इस प्रकार पूछा:-

हिरण्यकशिपु-हे पुत्र! आज तक तूने जो कुछ अपने आचार्य से सीखा है, इसमें से कुछ मुझे सुना, अपने पढ़े हुए में से कौनसी बात तुझे रुचती है।

प्रह्लाद-हे दैत्योत्तम! सब मनुष्य 'मैं' और 'मेरा' ऐसे मिथ्या अभिनिवेश यानी भ्रम के कारण से दुःखी हो रहे हैं और उनकी बुद्धि उद्विग्न हो रही है, इसलिये मुझे यह ही रुचता है कि वे सब वन में जाकर हरिका भजन करें, यदि कोई कहे कि घरमें ही रहकर हरिका भजन क्यों न करें तो उसका उत्तर यह है कि घर तो उनके अधःपात का यानी नीचे गिरने का निमित्त है, क्योंकि अंधकूप के समान मोहित करने वाला है, इसलिये एकान्त वनमें जाकर ही भजन करना चाहिये, यह ही मुझे रुचता है और सब विद्वानों का भी यह ही मत है।

नारद-हे शौनक! विष्णु भगवान् की निष्ठा वाले पुत्र के ऐसे वचन सुनकर दैत्येन्द्र गुरुपुत्रों से हंस कर इस प्रकार कहने लगा:-

हिरण्यकशिपु-हे शंडामर्क! छोटे वृक्ष के समान बालकों की बुद्धि चाहे जिधर को मोड़दी जा सकी है यानी जैसा कोई कहदेता है, उसको विना विचारे ही बालक ग्रहण करलेते हैं। हमारे शत्रुओं के भेजे हुए ब्राह्मण दैत्यों के वेष में आकर मेरे पुत्र को बहका जाते हैं, इसलिये तुम इसको अपने सामने ही रक्खा करो, अपने घर से मत निकलने दिया करो, जिससे कोई शत्रु इसकी बुद्धि को बिगाड़ न सके। बालक के चित्त में जो बात बालकपने में बैठ जाती है, वह आयु भर निकलती नहीं है। इसलिये तुम इस बालक पर सर्वदा ही दृष्टि रक्खो, कहीं बाहर आने जाने मत दो।

दैत्यराज के ऐसे बचन सुनकर शंडामर्क प्रह्लाद को अपने घर लाकर उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते हुए बड़े प्रेम से इस प्रकार पूछने लगे-

शंडामर्क-हे वत्स प्रह्लाद! तेरा कल्याण हो बड़ा चतुर है, सत्यवादी है, सच कह, झूँठ मत बोल, सब बालक हमारी शिक्षा मानते हैं, सबकी बुद्धि हमारी शिक्षा के अनुसार है, तेरी ऐसे उलटी बुद्धि कहां से आयी? क्या तू स्वयं ही शत्रुओं के पक्ष में बोलता है अथवा किसी दूसरे के सिखाये से ऐसा बोलता है, हे कुलनन्दन! यह बात हम तेरे गुरु जानना चाहते हैं-अच्छा! किसी ने तुझे बहकाया हो, तो उसका नाम हमें बतादे।

प्रह्लाद-(सरल वाणी से) अजी! अपना पराया है ही कहां? एक ही देव सब प्राणियों में गूढ है। जिन भगवान् की माया से मोहित हुए पुरुषों को यह अपना है और यह पराया है, ऐसी बुद्धि होजाती है, उन भगवान् को नमस्कार है, सब अंगों से नमस्कार है! मुझे तो सब में एक वही भगवान् दिखायी देते हैं, तुमको अपना पराया दिखायी देता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। जब यह भगवान प्रतिकूल होते हैं, तब मनुष्यों को 'मैं' और 'मेरा' ऐसी पशु बुद्धि होजाती है और जब वे अनुकूल होते हैं, तब यह पशुबुद्धि निवृत्त हो जाती है, उन्हीं भगवान् के अनुग्रह से मेरी ऐसी बुद्धि हुई है, अन्य किसी के बहकाने से नहीं हुई! उसी एक परमात्मा को अविवेकी पुरुष अपना और पराया इत्यादि अनेक प्रकार से निरूपण करते हैं और यह बात युक्त ही है, क्योंकि उस परमात्मा का मार्ग

जानने में वेदवादी ब्रह्मादिक भी मोहित हो जाते हैं, तब दूसरों का तो कहना ही क्या है। वह ही परमात्मा मेरी बुद्धि को भ्रमाता है। यदि कोई कहे कि वह तो निर्विकार है, फिर बुद्धि को कैसे भ्रमाता है, तो उसका उत्तर यह है कि जैसे अयस्कान्तमणि यानी चुम्बक के सामने आने से लोहा स्वयं ही घूमने लगता है, इसी प्रकार चक्रपाणि भगवान् के संमुख होने से मेरी बुद्धि स्वयं ही घूमती है।

नारद- हे शौनक! महामति प्रल्हाद के ऐसे वचन सुनकर दिन रात सेवक कुपित होकर प्रल्हाद को ललकार कर अन्य लड़कों से इस प्रकार कहने लगे:-

शंडामर्क-हे दैत्यबालको साम, दाम, भेद और दंड चार दंड शास्त्र में कहे हैं, उनमें से पहले तीन दंडों के योग्य यह नहीं है, यह तो पिछले दंड के योग्य ही है, लातों के देव, बातों से नहीं मानते. यह बालक अपने कुल के लिये अंगारा रूप है यानी अपने कुल का नाश करने वाला है। दैत्यों का वंश चन्दन का वन है। उस चन्दन वन में यह कंटकों का वृक्ष उत्पन्न हुआ है। जैसे बिना वैसे का कुल्हाड़ा वृक्ष को काट नहीं सका, इसी प्रकार इसके बिना दैत्यों के कुल को अकेले विष्णु नष्ट नहीं कर सके जैसे वैसे की सहायता से कुल्हाड़ा वृक्ष को काटता है, इसी प्रकार इसकी सहायता से विष्णु दैत्यकुल का नाश करेंगे, ऐसा प्रतीत होता है, इसलिये विष्णु रूप कुल्हाड़े के लिये यह बालक बैंटा रूप है, हमारा बैंत लाओ, हम इसको अभी सीधा करेंगे। समझाने से यह नहीं मानेगा। यह तो ताडन करने का ही अधिकारी है।

हे शौनक! इस प्रकार से धमकाना, डाटना आदि अनेक उपायों से प्रल्हाद को भय दिखलाकर आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम को प्रतिपादन करने वाले शास्त्र अध्ययन कराये। कुछदिन पीछे जब उन्होंने समझलिया कि प्रल्हाद ने साम, दाम, भेद, दंड चारों प्रकार के राजनीति के ग्रन्थ पढ़लिये, तब वे उसे दैत्येन्द्र के पास लेगये। माता ने प्रल्हाद को उबटने, स्नान आदि कराके सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनादिये थे ऐसे प्रल्हाद को पिता ने अपने चरणों में पड़ते हुए देखकर उसको पुचकारा और आशीर्वाद दिया और बहुत देरतक भुजाओं से आलिङ्गन करके आनन्द को प्राप्त होकर पूछा:-

हिरण्यकशिपु-हे तात! जो कुछ तूने अब तक पढा है, उसमें से जो कुछ सर्वोत्तम शिक्षा तेरे गुरु ने तुझे दी है। वह मुझे सुना।

प्रल्हाद-हे पिता विष्णु का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन, यह नव प्रकार की विष्णु की भक्ति है। इस भक्ति का करना ही मैं उत्तम पढ़ना मानता हूं। इस के सिवाय अन्य जो कुछ पढना है, वह सब व्यर्थ है, क्योंकि उसमें आयु का वृथा ही खोना है।

पुत्र के ऐसे वचन सुनकर हिरण्यकशिपु के दोनों ओष्ठ फड़कने लगे और वह गुरुपुत्रों से इस प्रकार कहने लगा-

हिरण्यकशिपु-हे कपटी ब्राह्मणो! क्या तुमने इसको यह ही पढाया है? हे दुर्बुद्धियो! तुम देखने में साधु दीखते हो और भीतर से असाधु हो, क्योंकि तुमने मेरा अनादर कर के इस बालक को मेरे विपक्षी का पाठ पढाया है। हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते हैं, इसी प्रकार तुम ऊपर से मेरे मित्र बनते हो और भीतर से शत्रु के समान मेरे साथ बर्ताव करते हो! तुम्हारा यह कपट छुप नहीं सकता। शास्त्र में कहा है कि ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होता है, मदिरा पीने वाला कुछ लाल और कुछ श्वेत दांत वाला होता है,

सुवर्ण चुराने वाला कनखी होता है और गुरु-तल्पग श्वेत कुष्ठ वाला होता है। इन रोगों से जैसे पूर्वकृत पातक का पता लग जाता है, इसी प्रकार कपटी का कपट भी अन्त में खुल जाता है।

शंडामर्क-हे इन्द्र के शत्रु ! आपका पुत्र न तो मेरे पढ़ाने से और न दूसरे के सिखाने से ऐसा कहता है किंतु इसकी ऐसी बुद्धि स्वाभाविक ही है। हे राजन् ! हम ब्राह्मणों के ऊपर क्रोध न कीजिये।

हिरण्यकशिपु-(प्रह्लाद से) हे दुर्बुद्धे ! जब तुझे गुरु ने ऐसी मति न दी, तो तुझमें यह दुष्ट बुद्धि कहां से आयी ? क्या तू अपने आप ही ऐसा कहता है।

प्रह्लाद-हे दैत्येन्द्र ! जो मूढ पुरुष घरको ही परम पुरुषार्थ मानते हैं, जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं हैं, जो पीसे हुए को ही बारंबार पीसते रहते हैं यानी पांचों विषयों को ही भोगते रहते हैं और ऐसा करने से संसार में ही घुसते चले जाते हैं, उनको कृष्ण में बुद्धि न तो अपने आप हो सकती है, न दूसरे से हो सकती है और न परस्पर ही हो सकती है, क्योंकि विषयासक्त का कृष्ण की भक्ति में अधिकार ही नहीं है। कोई कहे कि विषयों में तो क्षणिक सुख है और वह सुख भी सुखाभास है, वास्तविक सुख नहीं है और कृष्ण तो परमानन्द स्वरूप हैं। इसलिये विषयासक्तों की भी कृष्ण में बुद्धि होजायगी तो ऐसा नहीं है। जो मलिन अंतःकरण वाले लोग बाहर के पदार्थों को पुरुषार्थ मानते हैं। उनकी कृष्ण में बुद्धि नहीं हो सकी, कृष्ण तो उनको प्राप्त होते हैं और हो सकते हैं, जिनको अपने आपमें ही प्रीति है। बाहर के पदार्थों में प्रीति नहीं है, विषयासक्त लोग तो जैसे अंधे के पीछे अंधे जाते हों, इसी प्रकार ईश्वर की वाणी रूप दृढ़ रस्सी में कामना के कारण से बंधे हुए हैं. ऐसे लोग तो बारम्बार जन्मते और मरते ही रहेंगे, जैसा कि कहा है। जिनका चित्त विषयों में लगा हुआ है, उनका चित्त विष्णु में नहीं लग सका। जैसे कि वारुणी दिशा में प्राप्त होने वाली वस्तु को ऐन्द्री दिशा में जाने वाला मनुष्य नहीं पा सका। कोई शंका करे कि 'एक सर्वव्यापी, सर्व भूतों का अन्तरात्मा देव सब भूतों में गूढ है' इत्यादि श्रुतियों से प्रतिपादित विष्णु को ये लोग कैसे नहीं जानते। इसका उत्तर यह है कि अकिंचन, विषयविरक्त महात्माओं की चरणरज को शीश पर चढाये विना वेद का अर्थ समझ में नहीं आसका इसलिये श्रुति के वाक्य से उत्पन्न हुई बुद्धि भी असंभावना आदि दोषों के कारण से विष्णु को छू नहीं सकी यानी प्राप्त नहीं हो सकी, असंभावना आदि दोषों से रहित बुद्धि ही विष्णु को पा सकी है और उसी से जन्म मरण रूप संसार की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं होती है।

पाठक ! पिता पुत्र का संवाद समाप्त हुआ, पिता पुत्र को जो २ त्रास देगा, उसका वर्णन आगे के लेख में करेंगे। प्रह्लाद के कथन से यह शिक्षा मिलती है।

कुं-संतों की सेवा विना, वेद न समझा जाय।
संतों की सेवा करे, तभी समझ में आय॥
तभी समझ में आय, जगत में भेद नहीं है।
एक देव है गुप्त, रमे सब माहि वही है॥
भजे उसी को नित्य, यही शिक्षा वेदों की।
भोल ! तजदे भेद, मान शिक्षा संतों की॥

तुम्हारी ओर

गतांक से आगे

[ले०-श्री बी० एल० सराफ, बी० ए०, एल एल० बी०]

हमारे चरित्र में वैराग्य की भावना तथा वेदांत और शंकर के मायावाद ने ऐसा बाजारू संस्कार करदिया है कि संचय शीलता भी पातक की पौढ़ीतक पहुंच जाती है। इस दुर्गण ने हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा उसके उपार्जन के पहलू को अपाहजसा बनारखा है। यदि वैराग्य ही वांछनीय होता तो गृहस्थ आश्रम के अलग से बनाने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती, जिसके आश्रित हो "जीवन्ति सर्वजन्तवः" इस वैराग्य या मायावाद की अधसमझी विभूति का ही कारण है कि हिन्दू जाति की खासी संख्या "शरीरमाद्यं खलु सर्व साधनं" को व्यायाम द्वारा पुष्ट नहीं करना चाहती एक वस्तु के सम्बन्ध रखने वाला मायावाद हर वस्तु के हर पहलू में व्याप्त करदेने का विषाक्त फल ही हमें आज भोगना पड़ रहा है। कभीकभी अनर्गलता भी चहक कर इसलिये कहदेती है इस मायावाद ने हमारा सत्यानाश किया।

न मालूम यह क्यों समझ में हिन्दू जाति के नहीं आता कि संघर्ष जहाँ पल पल खड़ा है वहां बगैर प्रतिकार किये क्षेत्र छोड़कर भागना, क्लैव्यता की निकृष्ट पराकाष्ठा है। जनक क्या नहीं करते थे फिर भी विदेह थे। अनासक्ति योग कब अनुशासन करता है कि कार्य करने में आसक्ति नहीं रहनी चाहिये। कार्य करने में पूरी लगन सफलता की विधायक है। पर फल आये या नहीं विषाद की आवश्यकता नहीं। अफलता की सम्भाव्य सूचना पर ही निर्वीर्य होकर बैठना कहीं भी सम्मत नहीं फिर इस बाजारू वेदान्त को इस पुरातन जाति के विनष्ट करने का अवसर हम क्यों दे रहे हैं।

हमने बाजारू ज्ञान के लिये सब कुछ न्योछावर करदिया। वास्तविकता की तह पर पहुंचने के लिये हम मरघटे को अर्थी लेजाने वाले बूढ़ों के आगन्तुक वेदान्त पर क्यों अड़ जाते हैं। हमारी अड़चनें और बाधायें भी यदि ऐसी छूछी होतीं तो सब कुछ चल जाता पर वहां तो हसन्निज़ामी के हथकंडों में युद्ध होना है। पादरियों के आस्मानी बाप से संस्कृति रक्षणार्थ युद्ध होना है। आँखें मींच लेने से तो शिकारी मृगपर बाण छोड़ने में हिचकिचाहट नहीं करता।

दुर्बलेन्द्रिय, भ्रष्टचरित्र जन्तुओं की संख्या का संस्कृति संरक्षण के लिये क्या मूल्य? बिल्ली के निकल जाने पर युद्ध यात्रा छोड़ने वाले क्षत्रिय का क्या शौर्य? विधवा के दर्शन पर वैवाहिक अहिवात की अक्षुण्णता नष्ट होने वाले जन्मान्तर के संबंध की क्या पवित्रता? घरफूंक तमाशा देखने वाले आतिशबाजी और सैयाशी में शहखर्च व्यक्तियों का क्या

अस्तित्व ? निस्सहाय विधवा पर बलात्कार करने के सर्टिफिकेट देने की दृष्टि से विधवा विवाह विरोध करने वाले निर्लज्ज नरपिशाच की क्या धर्म की दुहाई ?

वर्षों के भगीरथ प्रयत्नों का निष्कर्ष हमें चींटी की चाल से आगे यदि नहीं चलने देता तो हूण, शक, बर्बर जातियों के आर्य का आह्वान शीघ्र ही क्यों न हो, या फिर युगान्तर की क्रांति का। सामाजिक क्रांति का आह्वान सुख की सेज पर बैठ कर नहीं किया जा रहा है। यह किया जा रहा है समर में खड़े होकर जहां से कभी कभी संस्कृति रक्षण करने वालों को लौटते पैर द्रुतगति से भागते देखना पड़ता है। यह उस मंच से किया जारहा है जिसके चारों ओर विधवाओं का नर राक्षसों के विरुद्ध चीत्कार उठरहा है, जहां पूंजी पतियों के कानों तक पहुंचाई गई हिन्दू अनाथों की आवाज़ बिला उत्तर टकरा कर भाईं ही पैदा करती है। जहां धर्म के नाम पर व्यभिचार परिष्कृत कर वितीर्ण करने का ढोंग रचा जाता है।

जहां पाशविक वृत्तियोंके संतोषार्थ ही धर्म का नाम वर्षों में केवल अवसर पर ही लिया जाता है, जहां मनुष्यता का अनैसर्गिक विभाग कर ईश्वर के दुलारों की सूरत और जाति पर ही तिरस्कार का फतवा दिया गया है, जहां १० वर्ष की बहुओं द्वारा फूंक में उड़ जाने वाले बालानसीन गुलाम, देशकी इज्जत मिट्टी मोल बेचने को, ठा ले जाते हैं, जहा बुद्धिवाद तथा वैज्ञानिक सत्य को मस्तक न नव कर पीरों और विथड़याक देवियों को सहज ही आत्मसमर्पण करा दिया जाता है। जहां गैरजिम्मेदार व्यक्तियों के कष्टार्जितपर द्रव्यपर गुलछर्रे उड़ा करते हैं। जहां वेदों की ध्वनि से पुनीत करने वालों के मुंह से "बलमा मिलाय जाव नैना" की गुंजार और कृपा कटाक्ष के तीरों द्वारा सतीत्व के साथ रासके ढोंगद्वारा बलात्कार किया जाता है। जहां समाज सुधारकों की वास्तविक सेवापर, उनके सच्चे उत्सर्ग पर, स्वार्थियों द्वारा सशस्त्र आक्रमण होता है। जहां स्वदेश के उद्योग को नष्ट करने वाले बाह्याडम्बरों में लिप्त देव, पुजारियों की चुंगल में गिरफ्तार हैं। जहां मनुस्मृति की दुहाई देने वाले "वर्णानांगुरुः" निरक्षर महाचार्य, सनातन कड़ियों की दुहाई देते हुए ही शास्त्रों के अवगाहन का पुण्य और अपना उद्दंड शासन अक्षत चाहते हैं। जहां पर्दा के विरोधी कुलांगनाओं को पर्दा के भीतर ही यक्ष्मा और पाशविक उल्लास की सामग्री समझते हैं, जहां सतियों की चरित्राग्नि में जलने से भय न खाते हुए फतिंगे उनके दामन खींचने को कामुकता से हाथ बढ़ाते हैं। जहां नई बत्तीसी लगवा कर विधुरत्व के प्रपंच का शिकार भोली लड़कियों को बनाया जाता है। जिन्हें समागम के अर्थ समझने को भी २-४ साल की देरी है।

जहां भूले भटके चोटी वाले कृष्ण भक्त का नाम अहमद और जेकब के सिवा कुछ हो ही नहीं सकता, जहां चौके की पवित्रता जातिगत है आचारगत नहीं। जहां तांगा हांकने का काम, हिजड़साज़ी दर्ज़ी का काम, चूड़ी बेचने का काम, जूता बेचने का काम, बीड़ी बनाने का काम, तथा साहबों के यहां खानसामागिरी हिन्दुत्व को विरोधिनी है, हिन्दुत्व को गारत करने वाली है, और इसलिये ऐसों के हाथ में छोड़ी गई है जो गुण्डे बाज़ी का मज़ा, देवी देवताओं तथा भारतीय हिन्दु ललनाओं तक को इन ओछे कामों के ज़रिये सरलता से चखासकें।

जहां संख्या की परवाह न हो केवल सोलह का दामन कीसी से न छू जावे इसकी ही अधिक

चिन्ता हो। जहाँ केवल एक सनातन धर्मी के रहते हुए भी हिन्दु धर्म की दिग्विजय की हुंकार निकालने की उद्दंडता हो। जहां साधारण व्यावहारिक ज्ञान की बात जिसका जानना एक भले नागरिक को अनिवार्य ही सुनकर मुँह खोल नेत्र फैला मूर्दों का आश्चर्य हर जगह प्रदर्शित हो।

जहां आर्थिक परिस्थिति का अनुपात कभी भी संतान जनने के अनुपात से ज्यादा न हो और पराश्रित गुलामों की वृद्धि को देखकर भी पिता को अपनी कामुकता को सीमित करने की न सूझे, जहाँ हिन्दू के नाते से हिन्दू से अवश्य छल किया जाकर मुहम्मद अली और हुसेन खां का स्वागत निश्चल प्रेम के साथ सलीक किया जावे और "न नीचो यवनात्परः" पर उद्दंड हास्य हो।

जहां राष्ट्रीय त्योहार और उपवास मिठाई के बगैर पारण तक न पहुंच सके। जहां त्योहारों के नाम पर केवल लार ही टपका करे शरीर के और किसी अंग से कोई भावना न निकले।

जहां चादर के बाहर पैर फैलाना ही श्रेष्ठता हो, और कर्जा लेकर ही अज्ञान गुड़ियों की समपदी गोद में लेकर धर्म के ठेकेदारों द्वारा कराई जाती है जहां काशी जी तथा हरिद्वार में गर्भपात के द्वारा धर्म का और इज्ज़त का संरक्षण होता है। जहां एक ध्येयता तथा जातीयता के नामपर आत्मविसर्जन के अवसर पर जाति की और आर्यसमाजी सनातनधर्मी की व्याख्या होने के बाद त्याग के प्रस्ताव पर वोट लेने की बारी आती है।

जहां "गुणकर्मविभागशः" को मानने पर भी जातियां जन्मगत ही रहेंगी। जहां पर स्वार्थ साधन के लिये कलियुग में भी समय, नीति तथा समाज की परिस्थिति को भी तिलाञ्जलि देकर विधर्मियों को रक्षण करते हुए भगुआ चमार पर छू लेने के सबब हिन्दू गण गुर्राते जावें, जहां समय की पुकार को सुनकर उदारता पूर्वक "शठं प्रति न शाठ्यं कुर्यात्" का फतवा देकर, नाली में से पड़े पड़े, विरोधी को पीटने वाले को हमदर्दी का सबक देने का यत्न किया जा रहा है। जहां व्यवहार तथा धैर्य की आज्ञाओं का अर्थ और विश्लेषण अधकचरे मग़ज के जरिये ही किया जाकर अमल में भी आ जावे।

जहां "हुंणवर्यरजातयः" हज़म होजाने के बाद अब उन्हें भीतर लेजाने में हीक आती हो देख कर ही फरूरी आती हो, जहां समयोपयुक्त शास्त्र तथा इतिहासकारों के प्राचीन उदाहरणों पर प्रदर्शन करके भी चमत्कार की अलौकिकता के बहाने उनके पालन करने का साहस नहीं होता।

जहां "दरिद्रान् भर कौंतेय" की आड़ में मोटे ताजे 'भुविभार भूतों' को भ्रष्टाचार प्रवर्तित करने के लिये अवसर देने को भोजन दिया जाता है ऐसी जाति के लिये भगवान् ही कहीं नई नीति गढ़े तब कहीं उसका उद्धार हो। जिसके पास राज नीति का आदिस्रोत होते हुए भी उसके मोटे सिद्धांतों का पालन करने में अनुरक्ति नहीं उसे राजनीति का क्या अर्थ? हिन्दूजाति जब तक आर्य समाज और सनातनधर्म का झगड़ा छोड़ कर जाति को मरने से बचाने की चिंता में संलग्न नहीं होती तब तक क्या राजनीति पढ़ाई जावे।

समाज का एक छोटा सा भी जीवित अंग उपर्युक्त समस्याओं की ओर अपनी दृष्टि लगाये है वा इन बातों के प्रतिकार के लिये बद्ध परिकर हो चुका है। इसलिये घर बैठे भी बिस्तर पर से दृष्टि फेंकने वाले बच नहीं सकते। अब लंबे अर्से तक आराम से समय बीत नहीं सकता। न समाज को धोखा ही दिया जा सकता है। समाज के ऋण के

परिशोध का समय आगया है। जो आर्य संस्कृति के द्वारा ही "कृण्वंतो विश्वमार्यं" का अखंडनाद क्रियात्मक रूप में करेगा। सुसज्जित होकर हिन्दू जाति के उद्धार के लिये खड़े होकर बिगुल की ही प्रतीक्षा करो। सुधारक बहुत पेशत से सन्नद्ध हैं। रास्ता तो "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया" है किन्तु और कोई मार्ग नहीं अब आंसू कबतक ढ़ाले जावें। माता को अपने रुदन से कब तक पुःरिपत किया जाय। कुरीति नाशिनी दुर्गा का आह्वान भी हो चुका माता के वक्षस्थल पर विजय की जयमाल ही शोभित होगी अधुमुक्ता की नहीं।

बाल केलि

[ले०—श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम]

झलके झगुला पुलके मृदु कोमल गात सुअंगन धूरि सने तनु।
छावत सौर प्रदेश कादिम्बिनी बाल विहान रवि कर पै मनु।
किलकारी दै तारि उठाय हगै मुसकाय भगे चहयो चन्द गहै जनु,
नूपुर रव कृत आवत मातु पै ठुमक ठुमक गति कृष्ण कन्हाई ॥ १ ॥

कर नवनीत सुगर पटपीत सुअंग दिपीति अनंग छकावत,
तोतरे बोल के धावत गोद में हेरत दृग चंचल इतरावत।
जेहि कं खं श्रुति कहि नेति तेहि नन्द यशोद ले गोद खिलावत,
चल चित शंकित आवत मातु पै ठुमक ठुमक गति कृष्ण कन्हाई ॥ २ ॥

मुसकावत स्फुट मुख दन्त प्रभा 'अज' फीकी परी लख चन्द जुन्हाई,
बिथुरी अलकें फलकें झपकें जनु छायो छपाकर रूप सुवाई।
दौरत बोलत हेरि अमी झरै वेणु सुरंग अधर अरुणाई,
किंकणी शंकृत धावत मातु पै ठुमक ठुमक गति कृष्ण कन्हाई ॥ ३ ॥

षट् प्रमाण संग्रह

अर्थापत्ति प्रमाण

[ले०—महात्मा राम "आश्रम"]

अव्ययं निर्गुणं शान्तं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

'अनुपपद्यमानार्थदर्शनात्तदुपपादकभूतार्थान्तर कल्पनं अर्थापत्तिप्रमा' अनुपपद्यमान् अर्थ को देख कर उस अर्थ के उपपादक रूप अर्थान्तर की जो कल्पना है उसका नाम 'अर्थापत्ति प्रमा' है। जैसे दिन में भोजन नहीं करने वाले पुरुष के शरीर की जो स्थूलता है वह स्थूलता रात्रि भोजन के विना नहीं बनती हुयी रात्रि भोजन की कल्पना कराती है उस कल्पना को 'अर्थापत्ति प्रमा' कहते हैं। दिन में भोजन नहीं करने वाले पुरुष के शरीर की स्थूलता रात्रि भोजन के विना नहीं हो सकी इस प्रकार का ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा का कारण रूप होने से अर्थापत्ति 'प्रमाण' कहा जाता है। तथा यह पुरुष रात्रि में भोजन करता है इस प्रकार का ज्ञान फल रूप होने से अर्थापत्ति 'प्रमा' कही जाती है। यह अर्थापत्तिप्रमा 'दृष्टार्थापत्ति' 'श्रुतार्थापत्ति' इस भेद से दो प्रकार की होती है। देखे हुए अर्थ को दृष्ट अर्थ कहते हैं। सुने हुए अर्थ को श्रुत अर्थ कहते हैं। दृष्ट अर्थ की अनुपपत्ति को देखकर उसके उत्पादक रूप अर्थान्तर की जो कल्पना है उसको 'दृष्टार्थापत्तिप्रमा' कहते हैं। इसी प्रकार श्रवण करे हुए अर्थ की अनुपपत्ति को देख कर उस अर्थ के उत्पादक रूप अर्थान्तर की जो कल्पना है उसको 'श्रुतार्थापत्तिप्रमा' कहते हैं। दृष्टार्थापत्ति का उदाहरण जैसे नेत्रादिकों में दोषवान् पुरुष को सामने पड़ी हुयी सीपी में चांदी को विषय करने वाला 'इदं रजतं' यह चांदी है इस प्रकार का भ्रम रूप अनुभव होता है। उस भ्रम रूप अनुभव का विषय जो रजत है तिस रजत के अधिष्ठान रूप सीपी के यथार्थ ज्ञान होने से 'नेदं रजतं' यह रजत नहीं है। इस प्रकार सीपी रूप अधिष्ठान के ज्ञान से रजत का बाध हो जाता है। रजत का बाध्यत्व दृष्ट अर्थ है। रजत का बाध्यत्व दृष्ट अर्थ रजत के मिथ्यापने के विना नहीं बनता हुआ रजत के मिथ्यापने की कल्पना कराता है उस कल्पना को दृष्टार्थापत्ति प्रमा' कहते हैं। श्रुतार्थापत्ति का उदाहरण। जैसे श्रुति ने कहा है 'तरति शोक मात्मवित्' आत्म ज्ञान वाला पुरुष शोक को तर जाता है। शोक शब्द से उपलक्षित काम क्रोधादिक सर्व विकारों को पार कर जाता है। यह श्रुति ज्ञान वान् पुरुष के शोक मोहादि रूप बन्ध की निवृत्ति को कहती है। इस श्रुति वाक्य से जो आत्मज्ञान से शोक मोहादि रूप बन्ध का निवृत्तिपना सुना है सो ज्ञान से बंध की निवृत्ति तभी हो सकी है जब बंध को मिथ्यापना होगा अर्थात् मिथ्या बन्ध की

ही ज्ञान से निवृत्ति हो सकती है। सत्यबन्ध की ज्ञान से निवृत्ति नहीं हो सकती किन्तु सत्य वस्तु की निवृत्ति तो कर्म से ही होती है। यह श्रुति उक्त बंध निवृत्तिरूप बंध को सत्य मानने से नहीं बनता हुआ बन्ध के मिथ्यापने की कल्पना कराता है इसी को 'श्रुतार्थापत्तिप्रमा' कहते हैं। अंतःकरण तथा अंतःकरण के धर्म और देह से आदि लेकर बंध कहलाता है, ये आत्मा को बन्धन करते हैं इसलिये इनको बन्ध कहते हैं। यहाँ पर किसी विपक्षी का प्रश्न है कि काम क्रोधादिरूप जो वृत्ति विशेष हैं जिनको बन्ध नाम से कहते हैं वह अन्तः करण का धर्म है अथवा आत्मा का धर्म है। यदि कहो कि अन्तःकरण का धर्म है तो अन्तःकरण जड़ है वा चेतन है? यदि अन्तःकरण जड़ है ऐसा कहो तो जड़ अन्तः करण में इच्छा आदि धर्म हो ही नहीं सकते, यदि जड़ वस्तु में भी इच्छा आदि धर्म होते होवें तो जड़ पाषाण में भी इच्छा होनी चाहिये परन्तु होती नहीं इसलिये अन्तःकरण में इच्छा आदि धर्म नहीं रहते दूसरे पक्ष में यदि अन्तःकरण को चेतन कहो तो यह भी नहीं बनता कारण यह कि अन्तः करण पंच भूतों का कार्य है। जो २ पदार्थ कार्य रूप होता है वह पदार्थ कारण से भिन्न सत्ता वाला नहीं होता तथा उत्पत्ति वाला पदार्थ नाश को भी प्राप्त होता है यह नियम है। जो पदार्थ उत्पत्ति नाश वाला होता है वह 'मिथ्या' होता है तथा 'जड़' होता है। अन्तःकरण की उत्पत्ति श्रुति में कही है यथा 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। तन्मनोऽकुरुत' इन श्रुतियों में मन, प्राण, इन्द्रियादि की उत्पत्ति कही है। ऐसे उत्पत्ति नाशवान् जड़ अंतःकरण में इच्छा आदिकों का कहना सर्वथा विरुद्ध है। तथा आत्मा में तो इच्छादिक धर्म रहते हैं ऐसा कहो तो यह कहना भी अयुक्त है। कारण यह कि 'असंगो ह्ययं पुरुषः। असंगो नहि सज्जते' इन श्रुतियों में आत्मा को असंग कहा है ऐसे असंग आत्मा को किसी भी पदार्थ के साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता। इस प्रकार विपक्षी पुरुष की शंका के प्राप्त हुए उत्तर कहते हैं। केवल 'जड़' अन्तःकरण को अथवा केवल 'आत्मा' को इच्छा आदिक धर्मों वाला हम भी नहीं मानते हैं। किन्तु अन्तःकरण विशिष्ट चैतन्य जिस को 'प्रमाता' कर्ता, भोक्ता, आदि नामों से कहते हैं उसी 'प्रमाता' के आश्रय इच्छा आदिक धर्म रहते हैं। वास्तव में तो 'प्रमाता' चैतन्य का भी धर्म नहीं है। 'प्रमाता' चैतन्य में इन धर्मों का 'आरोप' किया जाता है जैसे चाँदी के अभाव वाली सीपी में चांदी का 'आरोप' किया जाता है तैसे प्रमाता चैतन्य में 'बन्ध' का आरोप किया जाता है। जैसे सीपी के अज्ञान से सीपी स्थान में चांदी कल्पित होती है तैसे आत्मा के अज्ञान से आत्मा में 'बन्ध' कल्पित होता है। कल्पित, आरोपित, अध्यस्त, ये तीनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। यहाँ पर यह अनुमान है। 'अन्तःकरणं अध्यस्तं जडत्वात् दृश्यत्वात् आविद्यकत्वाच्च शुक्ति रूप्यवत्' अन्तःकरण प्रत्यक् आत्मा में अध्यस्त है जड़ तथा दृश्य तथा आविद्यक होने से जो २ पदार्थ जड़, दृश्य, तथा आविद्यक होता है वह अध्यस्त ही होता है जैसे शुक्ति में रजत जड़, दृश्य, तथा आविद्यक होने से 'अध्यस्त' है। इस अनुमान प्रमाण से अन्तःकरण का 'अध्यस्तपना' सिद्ध है। तथा श्रुति में भी 'अतोऽन्यदार्त्तम्। माया मात्रमिदं द्वैतं' चैतन्य आत्मा से अलग जो पदार्थ प्रतीत होते हैं वे सर्व आर्त कहिये तुच्छ हैं अर्थात् प्रतीतिमात्र ही हैं। और यह समस्त द्वैत प्रपंच माया मात्र है अर्थात् मिथ्या है।

अथवा 'जड़ोऽहं चेतनोऽहं' इस अनुभव से जड़ चेतन का परस्पर 'अध्यास' प्रतीत होता है। चैतन्य आत्मा का जड़ अन्तःकरण में 'अध्यास' है। 'अहं किमपि न जानामि' इस अनुभव से जड़ अन्तःकरण का आत्मा में 'अध्यास, प्रतीत होता है 'जानाम्यहं' इस अनुभव से चैतन्य आत्मा का अन्तःकरण में 'अध्यास' प्रतीत होता है। उप रोक्त कारणों से ही आचार्यों ने आत्मानात्मा का परस्पर 'अध्यास' माना है। जैसे चौकोरादि रूप लोहे का अग्नि में 'अध्यास' होने से तपाया हुआ लोहा अग्नि रूप होकर दाहक शक्ति वाला होजाता है तथा चौकोरादि धर्म रहित हुई भी अग्नि लोहे के सम्बन्ध से चार कोने वाली सी प्रतीत होने लगती है। तैसे ही आत्मा का अनात्मा में 'अध्यास' होने से अनात्मा भी 'सत्' रूप तथा 'चेतन' रूप तथा 'आनंद' रूप भासता है। और अनात्मा का आत्मा में 'अध्यास' होने से आत्मा 'असत्' जड़ 'दुःख' रूप प्रतीत होता है। इसी 'अध्यास' को 'अन्योऽन्याध्यास' कहते हैं। यह 'अन्योन्याध्यास' शास्त्रकारों ने कई प्रकार का कहा है परंतु यहां पर 'अन्योन्याऽध्यास' से स्वरूपाध्यास, तथा संसर्गाध्यास, यह दो प्रकार का 'अध्यास' ग्रहण किया है। आत्मा में अनात्मा का 'स्वरूपाध्यास, है तथा अनात्मा में आत्मा का 'संसर्गाध्यास, है। जो वस्तु स्वरूप से ही 'अध्यस्त' होवे वह 'स्वरूपाध्यास' कहा जाता है, और जिस वस्तु का 'संसर्ग मात्र' 'अध्यस्त' होवै वह 'संसर्गाध्यास' कहाजाता है जैसे सीप में रजत का 'स्वरूपाध्यास' है शुक्ति के त्रिकोणादि रूप का यथार्थज्ञान होने पर रजत की निवृत्ति होजाती है जहाँ 'अधिष्ठान' के ज्ञानसे 'अध्यस्त' वस्तु की निवृति होजावै वहां 'अध्यस्त' वस्तु का 'स्वरूपाध्यास' होता है, और 'संसर्ग' की निवृत्ति तो 'अध्यस्त' वस्तु की निवृत्ति के साथ ही होजाती है। आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार होने पर अज्ञान तत्कार्य रूप सर्व अनात्म जाल जो बन्ध रूप से आत्मा में 'अध्यस्त है निवृत्त होजाता है। इसलिये आत्मा में अनात्मा का 'स्वरूपाध्यास' है।

अध्यास का लक्षण–'परत्र परावभासः अध्यासः–अन्य वस्तु में अन्य वस्तु की प्रतीति होने को 'अध्यास' कहते हैं। जैसे चांदी के अभाव वाली सीपी में चांदी की प्रतीति होना। यह अध्यास 'ज्ञानाध्यास अर्थाध्यास, इस भेद से दो प्रकार का होता है। 'अतस्मिंस्तद्बुद्धिज्ञानाध्यासः' जिस वस्तु के अभाव वाले अधिकरण में जो उस सजातीय वस्तु का ज्ञान है वह ज्ञानाध्यास है। जैसे चांदी के अधिकरणता के अभाव वाली सीपी में जो 'इदं रजतं' यह चांदी है ऐसे ज्ञान को 'ज्ञानाध्यास, कहते हैं। 'प्रमाणाजन्य ज्ञानविषयत्वे सति पूर्वं दृष्टस्वानधिकरणं अर्थाध्यासः' जो पदार्थ प्रमाण 'अजन्य' ज्ञान का विषय हो तथा प्रतीति काल से पूर्व जिसका अभाव होवै वह पदार्थ 'अर्थाध्यास' रूप होता है। जैसे शुक्ति में रजत को विषय करने वाला ज्ञान किसी प्रमाण जन्य नहीं है तथा प्रतीति काल से पहले कभी शुक्ति के 'अधिकरण' में देखा भी नहीं है, तौभी यह चांदी है इस प्रकार सबको दीखती है।

यह 'अर्थाध्यास' प्रातीतिक, व्यावहारिक' इस भेद से दो प्रकार का होता है। 'आगंतुक दोष जन्यः प्रातीतिकः' जो 'अर्थाध्यास' 'आगंतुक' दोष जन्य होता है वह 'प्रातीतिक' कहा जाता है तथा 'प्रातिभासिक' कहा जाता है। जैसे शुक्ति में रजत, रज्जु में सर्प, मरु भूमि में जल, इत्यादि पदार्थ 'आगंतुक' दोष जन्य होने से प्रातीतिक कहे जाते

है। 'आगंतुक' दोष 'प्रमातागत दोष प्रमाण गत दोष प्रमेयगत दोष' इस भेद से तीन प्रकार का होता है। 'भय' तथा 'राग' आदि दोष 'प्रमाता' रूप अन्तःकरण में रहता है। 'पित्त कामला' तिलमिलादि, दोष 'प्रमाण' रूप नेत्र में रहता है। 'सादृश्यतादि, दोष 'प्रमेय' रूप विषय में रहता है। जैसे रज्जु के समान आकार वाला सर्प होता है यह विषयगत दोष है। सर्प को देख कर भय होना प्रमातागत दोष है। 'पित्तकामलादि से आंखों में तिलमिले आदि का होजाना नेत्र दोष है।

इति अर्थापत्ति प्रमा। अपूर्णम्

माया

[ले०—श्री यमुना प्रसाद श्रीवास्तव]

मन की गढ़ी हुई सामग्री और सामान को माया कहते हैं। यह संसार भी मन-गढ़न्त और माया के चमत्कारों से परिपूर्ण है। स्वयं भगवान् ने कहा है:—

मम माया संभव संसारा, जीव चराचर विविध प्रकारा॥

और भी—

आत्मयेदीं परिदृश्यते जगत्।
मायैव सर्वं परिहत्य चेतसा॥

भावार्थ

गो गोचर जहं लगि मन जाई।
सो सब माया जानहु भाई॥

ईश्वर के मन को ब्रह्माण्डी-मन और जीवों के मन को पिंडी-मन कहते हैं। वास्तव में दोनों एक हैं और उनके व्यापार भी एकसे हैं।

पिंडे सो ब्रह्माण्डे।

मन की दो अवस्थाएँ हैं। जाग्रत, और स्वप्न, जब मन इन्द्रियों में आता है तब जाग्रत और जब अपने स्थान पर स्थित रहता है तब स्वप्न की अवस्था होती है।

शरीर की तीन अवस्थाएँ हैं। जाग्रत, निद्रा, और स्वप्न, जब आत्मा मन और इन्द्रियों को प्रकाशित करता है तब जागृत, जब वह मन को प्रकाशित करता है तब निद्रा और जब वह पंच-प्राणों को प्रकाशित करता है तब सुषुप्ति की अवस्था होती है। जब आत्मा इन सबों को छोड़कर पृथक् होजाता है तब मृत्यु की अवस्था प्राप्ति होती है।

आत्मा के रहने के दो स्थान हैं। एक लोक, और दूसरा परलोक, इन दोनों के मध्य में स्वप्न की अवस्था है जो दीवाल की भांति बीच में खड़ी है। वहां आत्मा जागृत-अवस्था के देखे और सुने हुये व्यापारों को देखता है। और कभी २ उसे भावी भोगों के दृश्य भी जो उसके सूचनार्थ प्रकट होते हैं दिखाई देते हैं।

स्वप्नावस्था में शरीर के संपूर्ण अवयव निश्चल रहते हैं। इंद्रियां भी काम नहीं करती अकेला आत्मा रहता है उसी के प्रकाश में मन काम करता है और भीतर ही भीतर अपनी संकल्प शक्ति से सब सामग्री इकट्ठी करलेता है। हाथी की इच्छा होती है तो हाथी आजाता है, तैरने की इच्छा होती है तो नदी नाले लहरें मारने लगते हैं, और उड़ने की इच्छा होती है तो हवाई जहाज आजाता है। इस प्रकार पलक मारते में स्वप्न-सृष्टि तैय्यार होजाती है।

पल भीतर किया अचरज खेल।
धन्य! तुम समान नहिं दूजा मेल॥

यह स्वप्न-सृष्टि और उसकी सामग्री जब तक स्वप्न का अंत नहीं होता तब तक स्थिर रहती और साथ भासती है। जब स्वप्न का अंत हो जाता है तब वह भी जहाँ की तहां विला जाती है।

सुषुप्ति अर्थात् घोर निद्रा में जब कि इन्द्रियां बेखबर रहती हैं, आत्मा अपने पूर्ण तेज से जो अग्नि के समान समस्त चमत्कार का पुंज (एकमेवाद्वितीयम्) है प्रकट होता है परन्तु दासता और पापों की मलिनता तथा झूठ और मिथ्या पर सवार होने के कारण मनुष्य उसे देख नहीं पाता। आत्मा एक है-

'एक मेव द्वितीयं नास्ति।'

उसी को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्मदेव के मनमें जो संकल्प उठा है वह भी एक है-

'एकोहं बहुस्यामि प्रजा रूपेण तत्परः॥'

ब्रह्मदेव के संकल्प से जो सृष्टि उठी है वह भी एक है परन्तु उससे दो उपकार होते हैं। पहला उपकार स्वयं ईश्वर का है क्योंकि वह ब्रह्मदेव के संकल्पानुसार ईश्वर के ऐश्वर्य का प्रदर्शन करती है इसी कारण उसे ईश्वर-कृत अर्थात् ईश्वर-सृष्टि कहते हैं। दूसरा उपकार जीवों का है। परन्तु जीवों के भोग कर्माधीन होते हैं। प्रत्येक जीव को उसके कर्मानुसार भोग भुगाने के लिये पृथक् पृथक् संकल्प उठते और ईश्वर-कृत-सृष्टि की योनियों में प्रवेश पाकर तदुरूप हो भोग भोगते हैं। इसलिये उसे मानव-कृत अथवा जीव-सृष्टि कहते हैं।

इस प्रकार क्या जागृत क्या स्वप्न सब ही मन का पसारा है। मन की वृत्तियों को ख्याल कहते हैं यही ख्याल आत्मा में केन्द्रित होकर संसार बन जाता है। और आत्मा के आश्रय से लहरें मारने लगता है। इससे आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता केवल ख्याल ही बदलता है। ख्याल का अस्तित्व नहीं होता इसी से उसे संस्कृत में कल्पित और मिथ्या कहते हैं। आत्मा ख्याल नहीं है। वह तो ख्याल का अधिष्ठान अर्थात् आश्रय दाता है। ब्रह्मदेव का ख्याल भी कल्पित और मिथ्या है। उसके द्वारा उठी हुई सृष्टि भी वैसी ही कल्पित और मिथ्या है। हमारी और आपकी मूर्तियां भी कल्पित और मिथ्या हैं। कल्पित और मिथ्या सुनकर चौंकिये नहीं वरन् बुद्धि से काम लीजिये और अपने विचारों के तारपोदों को जो नस नाड़ी, शरीर आदि के रूप में आपके हृदय में अंकित हो रहे हैं थोड़ी देर के लिये हटा दीजिये फिर देखिये आपको आत्मा का अनुभव होगा। बस! यही सत्य है और सब मिथ्या है। मतलब यह है कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।

ईश्वर सत्य संकल्प और सत्य काम है इसलिये उसका संकल्प भी स्थायी है और वह कल्प के अंत तक स्थिर रहता है अतः ईश्वर की यह सृष्टि भी स्वप्न सृष्टि के समान जो स्वप्न का अंत होने तक स्थिर रहती है। कल्प के अंत तक स्थिर रहेगी

और स्वप्न-सृष्टि के समान ही जो स्वप्न के अंत तक सत्य भासती है। यह सृष्टि भी कल्प के अंत तक सत्य भासेगी। और कल्प का अंत होने पर स्वप्न-सृष्टि के समान ही वह जहाँ की तहां विला जायगी।

ईश्वर शुद्ध सतोगुण है। वह अपने विचार और संकल्पों में भी स्वतंत्र है। उसके संकल्प-शक्ति से उठी हुई सृष्टि भी वैसी ही शुद्ध, स्वतंत्र और पवित्र है तथा ज्ञान और विवेक युक्त होने के कारण सत्य है। जीव सृष्टि भी सतोगुणी है। परन्तु उससे सतोगुण में रजोगुण और तमोगुण का भी मेल है। इसलिये जीव-सृष्टि कुछ तो सत्य है और कुछ ज्ञान और विवेकशून्य है इसलिये असत्य है। जीव-सृष्टि के इसी भाग को काल्पित और मिथ्या कहते हैं। शास्त्रों में इसी को त्यागने की सलाह दी है।

दृष्टान्त

मान लीजिये कि ईश्वर के संकल्प से कर्मानुसार भोग भोगने के लिये एक स्त्री उठती और अपने स्वाभाविक रूप से ईश्वर-सृष्टि में विचरती है परन्तु जीवों की सृष्टि में पिता उसे पुत्री भाई उसे बहिन, पति उसे स्त्री, देवर उसे भौजाई, भाई के लड़के उसे बुआ और देवर के लड़के उसे चाची कहते हैं। ईश्वर ने तो यह नाते-गोते नहीं बनाये। जीवों ने ही शरीरों से सम्बन्ध जोड़कर इनकी कल्पना करली है और इस प्रकार अपनी एक नई सृष्टि अलग रचली है। यह मेरा पुत्र है! यह मेरी स्त्री है! यह मेरा धन है! यह मेरा घर है! यह ममता सर्वथा निरर्थक और सार-शून्य है। कौन किसका है? अर्थात् कोई किसी का नहीं है। मनुष्य अकेला आता है और अकेला ही जाता है आज तक कोई किसी के साथ नहीं गया। यदि कहो कि गया है। तो भी यह विचार मिथ्या है। यहां तो सब स्वार्थ के साथी हैं और स्वार्थ के वश होकर ही सब नाता जोड़ते हैं।

हरि बिन तेरो कोई न सहाई॥
काकी मात पिता सुत बनिता, को काहू का भाई॥
धन धरनी और सम्पत सगरी, जो मान्यो अपनाई॥
तन छूटे कछु संग न जाई, कहा ताहि लपटाई॥
दीन दयाल सदा दुःख भंजन, ता संग रुचि न बढ़ाई॥
नानक कहत जगत सब मिथ्या, ज्यों सुपने रैनाई॥

कोई न किसी का मित्र है और न कोई किसी का साथ देता है। जो मनुष्य सदा मेरा-तेरा करते रहते हैं वे बहुत भूलते हैं और बड़े भ्रम में पड़े हुए हैं।—

प्रीतम जान लेहु मन माहीं॥
अपने सुखसे सब जग फांस्यो कोऊ काहु को नाहीं॥
सुखमें आन बहुत मिल बैठते रहत चहुं दिशि घेरे।
विपत पड़ी सबही संग छोड़त, कोऊ न आवत नेरे॥
घर की नारि बहुत हित जासों, रहत सदा संग लागी।
जब यह छांड़ चली है काया, प्रेत प्रेत कर भागी॥
यह विधि को व्यवहार बन्यो है, यासों नेह लगायो।
अन्त बार नानक बिन सतगुरु, कोई काम न आयो॥

चाहे लोक हो या परलोक किसी से आशा करना अथवा किसी पर मर-मिटना भ्रम है। सब ही अपने स्वारथ के साथी हैं।—

सुर नर मुनि सबकी यह रीती।
स्वारथ लागि करें सब प्रीती॥

पशु पक्षियों में भी यही बात है।

स्वारथ के सबही सगे।
बिन स्वारथ कोई नाहि॥
सेवें पक्षी सरस तरु,
निरस भये उड़ जाहि॥

परन्तु कौन सुनता है।–

'सदा नक्कार खाने में तूती की सुनता कौन है।'

यह तो वह मरुस्थल है जो बिना प्राण लिये नहीं मानता। मरने के समय मनुष्य रोता पछताता और यह कहता है।

जगत में झूठी देखी प्रीति ॥

अपने मुखसे सबजग फाँस्यो, क्या दारा क्या मीत ॥
तेरो मेरो सबहि कहत हैं हित से बाँध्यो चीत।
अन्त काल संगी कोऊ नाहीं, यह अचरज की रीत ॥
मन मूरख अजहुं नहिं समझे, सिखदे हारी नीत।
नानक भव-जल पार करे जब, गावे हरि के गीत ॥

किसी २ ने इसे स्वप्नवत् कहा है–

जाग्रत स्वप्न का ज्यों व्यौहार।
वैसा ही समझो जगत असार ॥

और किसी २ ने इसे कोरा ख्याल ही बताया है–

हस्ती के मत फ़रेब में आजाइये असद।
आलम तमाम हल्क़ये दामे ख्याल है ॥

भावार्थ

अय ग़ालिब! इस सृष्टि के चक्कर में मत आजाना। यह सब प्रपंच तुम्हारे ख्याल के सिवाय और कोई चीज़ नहीं है।

यही माया है।

यह संसार स्वप्न की माया।
सत्य जान पृथा भरमाया ॥

इसी को "दूर के लड्डू"। 'ख्याली पुलाव'। 'हवाई किला'। 'मनमोहक' आदि नामों से संबोधन करते हैं।

इस जाल में सब उलझाये, दुनिया है गोरख धन्धा ॥
डाल रखा है सबने गले में, माया-मोह का फन्दा ॥
ये दुनिया है 'दूर का लड्डू' देख के जी ललचाये।
ना खाये तो भी पछताये, खाये तो भी पछताये ॥
फिर भी सकल जगत है अन्धा।

इस दुनिया के सुख भी झूठे इसका प्यार भी झूठा।
सावधान हो! इस ठगनी ने बड़े बड़ों को लूटा ॥
मूरख! मत बन इसका बन्दा ॥

ख्याल अथवा कल्पना का आधार मन है इसी को माया कहते हैं। ईश्वरीय ख्याल का नाम मन है। माया की रची हुई सृष्टि को ईश्वर-सृष्टि और जीवों की रची हुई सृष्टि को जीव-सृष्टि कहते हैं। माया के अधिष्ठान की दृष्टि से आत्मा को 'ईश्वर' मनके अधिष्ठान की दृष्टि से उसे 'जीव' और अधिष्ठानातीत दृष्टि से उसे ब्रह्म कहते हैं।

मनुष्य को यह चोला इसलिये मिला है कि वह इस संसार में दूसरों का उपकार करे और अपने कर्म-बन्धन काटकर परम पद की प्राप्ति करे परन्तु वह इसका चमक-दमक देखकर भूलजाता है और उसे आगे की सुधि नहीं रहती। वह यह समझ कर कि सदा यहीं रहेंगे यहां के लिये हजारों तरह के सामान करता है परंतु आगे की यात्रा के लिये कुछ भी नहीं करता। यहां के लिये तो इतना आडम्बर और वहां के लिये कुछ भी नहीं! यह चतुराई तो अच्छी नहीं मालूम होती।

क्या यह दुनिया जिसमें कोशिश हो नदी के वास्ते।
वास्ते वहां के भी कुछ! या सब यहीं के वास्ते? ॥

भावार्थ

इस दुनिया में आकर कुछ परलोक के लिये करना चाहिये। यह नहीं कि यहां की फिक्र बिलकुल ही न कीजावे।

भक्ति के प्रिय पाठको ! इस माया-जाल से निकलने की चेष्टा कीजिये। खूब धावधान रहिये इस संसार के सभी भोग अहित कर और असत्य हैं। केवल आत्मा ही सत्य है। दिनरात उसी का ध्यान चिन्तन कीजिये।

हे देव ! हे दयित ! हे भुवनैक बन्धो !
हे कृष्ण ! हे चपल ! हे करुणैक सिन्धो !
हे नाथ ! हे रमण ! हे नयना भिराम !
हा ! हा ! कदानु भविनासि पदं दृशो मे ?

"वह"

[ले०—श्री लक्ष्मी प्रसाद मिस्त्री 'रमा']

कैसे यह हो सकता ? उससे न प्रेम करे, वह अपनावे नहीं-तेरा ये बहाना है।
ऐसा नहीं वह कभी किसी को दुःख देय, उस का तो काम स्नेह नेहीं से निभाना है॥
द्रवीभूत होता वह प्रेमी की पुकार सुन, प्रेम करने में तो वो-तुझ से सयाना है।
दोष देना-तेरा वृथा उसे 'रमा' बार बार, जानता है वो-जो होता उसपै दीवाना है॥

× × × ×

कह दूं मैं कैसे ? कि वो यहाँ पै कहीं है नहीं, उस का तो ठौर ठौर विश्व में आभास है।
देखा नहीं आज तक उसको किसी ने कभी, सुन्दरता कैसी है औ कैसा वो लिबास है॥
जहाँ देखो वहाँ पर उसकी ही कला सब, चंद्र और सूर्य में भी उसी का प्रकास है।
लेकर पीपीलिका से सब प्राणियों में सदा, 'लछमी प्रसाद' वह करता निवास है॥

वसन्त

[लेo—श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 'विशारद' आश्रम]

हिन्दुधर्म के प्रत्येक उद्देश्य बड़े गहन आदर्श के साक्षी हैं। यह देश ईश्वर की कृति में सर्वांङ्गपूर्ण है फिर इसके वासी पूर्व काल में उच्च आदर्श को स्थापित कर गये हैं। कालकी सीमा, वर्ष, ऋतु, मास, पक्षों द्वारा समीचीनता से सीमित की है, प्रत्येक संवत्सर के सुन्दर विभागों में ऐसी २ विधियां रक्खी हैं जिनके द्वारा मनुष्य जाति का परम आनन्दमय जीवन निर्वाह होता है। मनुष्य ईश्वर का निकट सम्बन्धि है जिस प्रकार ईश्वर की कल्पनायें हैं उसी सुख का यह भी प्यासा है। सभी देशों का मुकुट रूप यह देश अपने गौरव के लिये बड़े२ उच्च आदर्शों के स्थापक महात्माओं के जन्म का श्रेयोभागी है। मनुष्य जाति का ध्येय अन्यान्य जातियों से कहीं बढ चढ कर है। प्राचीन काल में समय को समाज, धर्म, आचार की उन्नति में बहुत लगाया जाता था। प्रत्येक विभाग में मुख्य अंग पूर्ण होता था। जैसा मनुष्य सामाजिक जन्तु है ऐसा ही इसका समाज संगठन सूत्र विशाल और विस्तृत है। पहले का समाज बड़ा आदर्श एवं सत्यवादी था। मनुष्यों के समष्टि एवं व्यष्टिगत सभी व्यवहार समाजमय थे, और समाज केवल एक और सुदृढ विशाल था। आजकी भांति मत मतान्तरों का वैमनस्य नहीं था, तभी तो ऐसी कानून स्मृति रूप में विद्यमान् हैं। यदि समाज नहीं मानता तो श्रुति और स्मृति दोनों की कानून किस काम की थी, जहां और बड़ी २ आदर्श प्रणालियें पूर्व समाज प्रचलित हैं वहाँ एक यह भी है कि समय का पुण्यस्मृति के स्मारक के रूप में बार त्योहारों का क्रम बंधा हुवा है। समाज आस्तिकवाद का बड़ा पक्षपाती था, आज की भाँति खोखला समाज नहीं था। आज न तो हम आस्तिक हैं न नास्तिक ही। प्रत्येक घर में काल सीमा में नियुक्त किये हुये त्योहारों को आदर पूर्वक मानने का भाव था।

होली, दिवाली, जन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, वसन्तपञ्चमी आदि ऐसे २ मांगलिक दिन नियत हैं जिनमें समाज का आमोद प्रमोद खूब विकसित होता है। ऋतुओं के भिन्न २ विधानों का ऐसा संकलन है कि मानो प्रकृति की सविधान राज व्यवस्था का शासन हो। प्रत्येक ऋतु में आचरणीय सुन्दर आचारों का मनोहर ग्रन्थन है। विश्वनिर्माता के समभाव से सभी चित्रों के चित्रण में स्वाभाविक ही एक से एक विचित्र चित्रित होता है। छः ऋतुओं के सुन्दर काल में भी वसन्त ऋतु का काल परम रमणीय और मनोहर है। काल की रमणीयता के कारण ही इसको ऋतुराज पद प्राप्त है क्योंकि राजा सबको सुखदेने वाला होता है इसी प्रकार यह भी न शीत, न उष्ण समकाल रूप में चर अचर सबके सुख का हेतु है। अथवा यह अन्य पांचों ऋतुओं में अधिक शोभा पाता है। वृक्ष, लता, कुंज सबमें जीव

शीर्ण दलों के त्यागने पर नूतन कोपलों के प्रादुर्भाव से एवं पुष्पों के विकास से शोभा की शोभा द्विगुणित होजाती है। शीत के प्रभाव से कुम्हलाये हुये विरवे नवीन स्फूर्ति सञ्चार से कुड्मलित हो जाते हैं। शरद के शीत से ठिठिरी हुई भूमि उर्वरित होने लगती है। दक्षिणायन से निवृत्त होते हुये उष्णांशु की किरणों से कृषि लहलहा जाती है। सरसों के क्षेत्र अपूर्व अभिनवा पीलिमा से प्रकृति वधू का नूतन परिधान धारण करते हैं। वनावली की छटा अपूर्व ही होने लगती है। प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में नूतन संचार आरम्भ होता है। मनुष्यों के शिरों में रक्त की तीव्र गति होती है। आलस्य दूर भगजाता है अब तो 'वसन्ते भ्रमण पथ्यम्' होने लगता है। यह सब प्रकृति का विधान बड़ी अनुकूलता से होता है, अब कुछ वे विधान भी बता देते हैं जो कि मनुष्यों को अवश्य ज्ञातव्य हैं जिस का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को परम आवश्यक होता हुवा भी सर्वथा छुटा हुवा है।

अपने जीवन को सुख पूर्वक निर्वाह करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को अपना नैतिक आचरण अवश्य ज्ञात होना चाहिये किन्तु आजकी शिक्षा में इन सब बातों की भारी त्रुटि है।

वसन्त में भोजन हलका करना चाहिये जिससे आसानी से पच सके। भोजन का ही शरीर पर विशेष प्रभाव होता है। यदि भोजन काल मात्रा आदि के विना विचारे अधिक न्यून किया जाता है तो अवश्य स्वास्थ्य को हानि कर होगा। स्वास्थ्य का बनना विगड़ना जल वायु और विशेष कर भोजन पर निर्भर है। भोजन सात्विक होना चाहिये जैसा कि श्री गीताजी में कहा है:-आयु बुद्धि बल, आरोग्य, सुख, प्रीति को बढ़ाने वाला, रसयुक्त, चिकना, अनुत्तेजक, रुचने वाला भोजन सात्विक होता है। कड़ुवा, खट्टा, नमकीला, अति उष्ण, तीखा, रूखा दाहक राजसी आहार है तथा बासी, नीरस, दुर्गन्धयुक्त, झूठी, और अपवित्र आहार तामसिक है। यद्यपि लोक में विशेष राजस व तामस आहार की बाहुल्यता है। और यही दुःख का कारण है। प्रकृति के अनुकूल आहार सात्विक ही है। जिससे स्वास्थ्य की पूर्ण रक्षा होती है। आज भोजन स्वास्थ्य के उद्देश्य को गौण रखकर जिह्वा तृप्ति को मुख्य रख कर प्रायः किया जाता है जिस के कारण ही शत प्रतिशत जन संख्या रोगाक्रान्त है। यदि हम शास्त्रोक्त या प्रकृति अनुकूल व्यवहार पर चलें तो अवश्य शारीरिक सुख का अनुभव कर सकेंगे। शारीरिक सुख से ही मानसिक सुख होता है। हम को भक्ति, ज्ञान, योग इसीलिये भयंकर प्रतीत होते हैं कि रोगों से ही छुटकारा नहीं मिलता।

वसन्त में व्यायाम भी करना चाहिये। रक्त का परिवर्तन होता है यदि व्यायाम किया जाय तो रक्त शुद्ध होजाता है। शास्त्रों में तो सदा ही व्यायाम का विधान लिखा है और बड़े २ गुण लिखे हैं परन्तु वसन्त में विशेषकर "वसन्ते भ्रमणं पथ्यम् लिखा है। वैद्यक में व्यायाम के विशेष गुण लिखे हैं।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥ (भाव प्रकाश)

व्यायाम से शरीर हलका फुर्तीला रहता है, काम करने की सामर्थ्य होती है, जठराग्नि दीप्त होती है, चर्बी का नाश होता है, अंग सुडौल और पुष्ट होजाते हैं।

वसन्त के सुन्दर काल में जहां तक होसके प्रसन्न रहना, अल्प भोजन, युक्त व्यायाम, प्राणायाम, भ्रमण करना चाहिये। इस ऋतु को बड़ा गौरव है क्योंकि भगवान् कृष्ण ने गीता में कहदिया है:- "ऋतूनां कुसुमाकरः" कि ऋतुओं में वसन्त

मेरा ही स्वरूप है या मैं ही हूं। अतः इन दिनों श्रीकृष्ण भगवान् की होली भी गानी चाहिये।

सुन्दर सुखद अतिशय मनोहर काल होय बसन्त का।
अभ्यास अरु वैराग्य हो पुनि संग होवे सन्त का॥

कुछ भी नहीं

[ले०—श्रीमती ब्रजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम]

इस नश्वर असार प्रसार संसार को कवि कोविद प्रभृति परिवर्तन शील कहते हैं किन्तु सूक्ष्म दृष्ट के आलोक से अवलोकन किया जाय तो यह ही कहना यथार्थ में उपयुक्त होगा कि कुछ भी नहीं? क्योंकि हम सदी शताब्दी के परिवर्तनों को जो इस विशाल विश्व में व्याप्त अथवा प्रकाशित होरहा है। सुनते सोचते देखते हैं। जो हजार वर्ष पूर्व थी आज वह नहीं जो आज है वह फिर न होगी। हम प्रत्येक दिन के प्रति विभाग में अपने हृदय के कल्पना सम्राज्य में तथा अपने मस्तिष्क केन्द्र स्थल में नूतन (नई) विभूति का प्रादुर्भाव तथः विलीन होना अनुभव करते हैं। हम देखते हैं सूर्योदय होता है, चराचर प्राणी जागृत होते हैं, अन्त में सूर्यास्त होने पर अस्त होते हैं और पुनः जागृत होते हैं, यह क्रिया नित्य होती रहती है। प्रातः काल वाटिका में लताद्रुमों को पुष्पा भरण भूषित देखते हैं। जो आज पुष्प है रंग और प्रभा से प्रभूत है वह ही सायंकाल तक धूलि धूसरित हो पृथिवी के रज कणों से व्याप्त होजायेगा। तब यह ही कहना होगा कुछ भी नहीं।

प्रत्येक हृदय अपने कर्म फल के भावों, विचारों का कल्लोलिनी के कल्लोल वत् (ज्वार भाटा) उत्थान पतन करता रहता है। हमारी कल्पना शक्ति चेतना शक्ति तर्कना शक्ति देखती है, अनुभव करती है और विलीन करदेती है। और अन्त में नश्वरता ही प्रतीत होती है तब हमारी आत्मा यह कहती है कुछ भी नहीं।

जिस वस्तु को बड़े कष्टों से, परिश्रम से, वर्षों के प्रयत्नों से पाया भी और अन्त में उसका भी समाप्ति हुई तब यही कहना होगा कुछ भी नहीं।

इस अथाह भवार्णव में सब बहते हुये दिखाई देते हैं। किसी को जनकी चिन्ता, किसी को धनकी, कोई दुःख में रोते हैं, कोई हंसते हैं और कोई अपनी धुन में मस्त हैं, कोई प्रयत्न करते हुये फल के प्रतीक्षक है, कोई निराशा देवी के गत में पतित हैं अस्तु इसी प्रकार सब विचार रश्मि में से गुथित हैं।

दुःख, बवंडर, सन्ताप की झंझानिल, दैवी प्रकोप, गृहदशा आदि से सबही व्यस्त त्रस्त हैं। मनुष्य जन्मता है, मरता है, बालावस्था, युवावस्था में आता है। धन, जन की लालसा में ये अभिभूत रहता है। कभी जीवन के कर्मक्षेत्र की विषम समस्या में पड़ता है और अन्तिम अवस्था वृद्धावस्था जोकि नितान्त दुःख प्रदायिनी है यथा:- 'अंगं गलितं पलितं मुंडं दशन विहीनं जातं तुंडम्'।

अंग प्रत्यंग गलने लगते हैं पीड़ा घर कर लेती है, दशन दान्तों से हीन कुरूप मुंह होजाता है और पराधीन होना अवश्य सम्भाव्य है तब यही कहना होता है कि कुछ भी नहीं, फिर यही विचार उठता है कि कुछ भी नहीं है। तो यह कुछ भी नहीं है उसकी प्रतिद्वंद्वता में कुछ तो है? अवश्य है वह अद्वैत है अनश्वर है अबद्ध है यथा:-

इतो न किंचित् परतो न किंचित्।
यतो यतो यामि ततो न किंचित्॥
विचार्यमाणेपि जगन्न किंचित्॥
स्वात्मावबोधादपरं न किंचित्॥ १॥

यहां पर कुछ नहीं वहां, (परलोक) में भी कुछ नहीं, जहाँ जाता हूं वहाँ भी कुछ नहीं यह संसार भी कुछ नहीं केवल आत्मज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

आत्मज्ञान क्या है? क्या इन दो शब्दों का उद्बोधन होना ही आत्मज्ञान है? नहीं वह है परमात्मा परमानन्द मय जो वाणी से कथन नहीं किया जाता यद्यपि वाणी उसकी सत्ता से बोलती है, वह चक्षु से दिखाई नहीं देता यद्यपि चक्षु उसकी शक्ति से देखते हैं, श्रवण से उसको सुना नहीं जाता यद्यपि श्रवण उसकी शक्ति से सुनते हैं, वह इन्द्रियातीत है, छंदातीत है, अगम्य है, अगोचर है अलक्ष्य है। यथा:-'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचोह वाचं स उ प्राणस्य प्राण' उसका किसी लक्षण से निर्देश नहीं होता बुद्धि विचार की वहां प्रगति नहीं केवल आन्तरिक अनुभव से ही उसका ज्ञान हो सकता है। वह मायिक प्रपंच से परे है शान्त है कल्याण रूप है अद्वैत है। हम उसे इन्द्रियों से जानना चाहें तो नहीं जान सकते अन्य क्या श्रुति भी नेति २ करके मौन है।

इस पर बिहारी लाल का जो हृदयाकर्षक कथन है उसका दिग्दर्शन कराते हैं।

बुधि अनुमान प्रमान श्रुति, किये नीठि ठहराय।
सूक्ष्म कटि परब्रह्म लौं, अलख लखि नहीं जाय॥

देखिये प्रिय पाठक! इसमें शृंगारी बिहारी महाकवि ने परमात्मा का वर्णन किस अनूठी उक्ति से किया है कि वह अदृश्य केवल बुद्धि, अनुमान, प्रमाण श्रुति करके उसका होना मानते हैं जैसे वह अज्ञात है।

ऐसा जो प्राप्तव्य है उसे ही प्राप्त कर जीवन सफल बनाना है आदि में वही था और अन्त में भी वही है उसी से मिलना है तो फिर बीच में उससे क्यों वियुक्त हुये। मनुष्य काल चक्र से प्रेरित हो इस प्रकार अपना जीवन समाप्त करदेता है। यथा:- पेट में पोढ़े नहीं पर पोढ़े, पालना पौढ़ के बाल कहाये। आई अबै तरुणाई त्रिया संग, सेज पै पौढ़ के रंग मचाये॥ छीर समुद्र के पौढ़न हारको ब्रह्म कबहूं चत सों नहीं ध्याये पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही सों चितापर पौढ़न के दिन आये॥

इसी प्रकार अन्तिम अवस्था हाथ मलते २ व्यतीत होजाती है। जो महान् सज्जन हैं वह इस जीवन को अमूल्य समझते हैं उनकी धारणा यह है। यथा:-

इह चेद वेदी दथ सत्य मस्ति,
न चेद वेदिहा महती विनष्टि।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः,
प्रेत्यास्मा ल्लोकादमृता भवन्ति ॥

यदि इस मनुष्य योनि में ही भगवान् को जानलिया तो ठीक है अन्यथा बड़ी हानि होगी। क्योंकि यही कर्म योनि है इसलिये इसी योनि से भगवान को प्राप्त कर सकते हैं अतः इस मन्त्र में इह शब्द दिया है और उस सर्व व्यापक विश्वमेंद प्राणी मात्र में जो महापुरुष देखते हैं वे इस शरीर को छोड़कर मोक्ष धामको प्राप्त होते हैं।

अपूर्णम्

बसन्त

[ले०-श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 'विशारद' आश्रम]

आयो बसन्त अनन्त अनूठो, मनहु मनोभव जागत रूठो ॥
इत उत छिरकत छवि मृदु अपनी, शोभन सुषमा कृत अति मूठो ॥ १ ॥
पद रजरेणु किरति रजनीपति, भाव कलावत अमिमय मीठो ॥ २ ॥
विकसित विटप लता द्रुम सरसों, प्रकृति वधू जनु दे अवगूठो ॥ ३ ॥
भाव भाव अति रम्य मनोहर, अह ऋतुराज साज सब सूठो ॥ ४ ॥
परिणत सकल पदारथ मूलम, विपरिणाममय सब जग झूठो ॥ ५ ॥

योग-साधन

[ले०-श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती]

९८६ संसार में काम करता हुआ मनुष्य सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। यदि मनुष्य ऐसा करे तो कर्म उसको बान्ध नहीं सकते। इसके अतिरिक्त कल्याण का कोई और मार्ग नहीं है। ईश० २। यह कर्म निष्ठा उनके लिए है जो संन्यास मार्ग को ग्रहण नहीं कर सकते। प्रथम मंत्र संसारी पदार्थों से उदासीनता और वैराग की शिक्षा देता है और संन्यासियों को ज्ञान निष्ठा में प्रवृत्त कराता है। सन्यासी पुत्र, धन और नाम तीनों इच्छाओं को छोड़कर अपना चित्त सदैव आत्मा पर लगाता है।

९८७ नारायण उपनिषद् का वचन है आदि में मनुष्य के कल्याण के लिए दो मार्ग बताए गये हैं एक कर्म-मार्ग और दूसरा संन्यास-मार्ग। दूसरा मार्ग तीनों वासनाओं को छोड़ने का है। इन दोनों में से संन्यास मार्ग श्रेष्ठ। तैतरिय उपनिषद् का भी वचन है कि निश्चय करके संन्यास मार्ग श्रेष्ठ है।

९८८ जिस प्रकार शरीर में आत्मा, बालकपन, जवानी और बुढ़ापे का अनुभव करता है इसी प्रकार यह दूसरे शरीर में चला जाता है। बुद्धिमान को इसका शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि इस परिवर्तन से किसी प्रकार की हानि नहीं है।

९८९ इस स्थूल शरीर के नाश होजाने पर भी निश्चय करके हमारी स्थिति बनी रहेगी क्योंकि आत्मा अमर है, सनातन है और अजर है।

९९० जिस प्रकार निर्मली के बीज जल में डालने से उसकी गन्दगी को शुद्ध कर देते हैं और गीदल को अपने साथ लेकर जलके नीचे बैठ जाते हैं, इसी प्रकार नित्य निरन्तर अभ्यास से और "अहम् ब्रह्मास्मि" भावना के अभ्यास से ब्रह्माकार वृत्ति परिपक्व होकर चित्त शुद्ध होजाता है और अज्ञान जनित अविद्या का नाश होजाता है। विषय वासना के चिन्तन करने वाले मनुष्य को चित्त की शान्ति कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती। अंहकारी और लालची पुरुष का चित्त सदैव अशान्त रहता है।

९९१ अहंकारी अभिमानी धनी पुरुष छोटी २ बातों पर बहुत शीघ्र नाराज़ होजाता है। जब उसके विरुद्ध कोई बोलता है तो वह झट क्रोधित होजाता है परन्तु एक नम्र आध्यात्मिक पुरुष जिसने संसार के पदार्थों से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है, जो आत्मा में वास करता है, जिसने अपने अहंकार को मार लिया है, अपमानित होनेपर, पीटे जाने पर और दलित होने पर भी शान्त रहता है उसमें अध्यात्मिक शक्ति है इसलिए वह सदैव चट्टान की भान्ति दृढ़ रहता है।

९९२ जिस प्रकार वृक्ष घास, पत्ते आदि जलकर राख बनजाते हैं इसी प्रकार यह दृश्य जगत, शरीर,

मन, प्राण और इन्द्रियों सहित ज्ञानकी अग्नि में जलकर ब्रह्म में लीन होजाते हैं।

९९३ यदि तुम मथुरा वृन्दावन के स्वामी, मुरली हाथ में लिये हुए भगवान् कृष्ण के दर्शन करना चाहते हो तो तुमको बड़े प्रेम से अश्रुधारा बहानी पड़ेगी। हंसते २ उसका पाना कठिन है। चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित्र पढ़ो वह किस प्रकार विह्वल होकर भगवान् के दर्शन के लिए रोया करते थे। वह पृथ्वी पर लोटते रहते थे, आंसुओं से उनका समस्त शरीर भीग जाता था। यह विरह अग्नि है। यह सच्ची भक्ति है। क्या तुम्हारे ऐसा दिल है जो अपने प्यारे के लिए रुदन कर सके? अपने आपको धोखा मत दो, तुम उसको धोखा नहीं दे सकते कारण वह तुम्हारे समस्त विचारों का साक्षी है। यदि तुम्हारा हृदय कठोर है तो इसको जप, कीर्तन भागवत् के स्वाध्याय, सत्संग और भक्तों की सेवा से नम्र बनाओ। एक क्षण भी व्यर्थ मत खोवो, खड़े होजाओ। कमर कसलो, आनन्द में मस्त होजाओ, साधन करो। सुन्दर और रमणीक स्थान में जाकर खूब रोओ। रोने से भी भक्ति का विकाश होता है परन्तु रोना हृदय से चाहिए। भगवान् की प्यास के लिए ही आंसु बहने चाहिएं।

९९४ नीचे दर्जे के भक्त विधी निषेध में रहते हैं। वह रीति रिवाज से बन्धे हुए होते हैं। मन्दिर में जाते हैं, मूर्ति पूजा करते हैं, पुष्प, चन्दन, अर्घ नैवेद्य चढ़ाते हैं। वह अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, दान, सेवा आदि का आचरण करते हैं।

९९५ अपने समस्त विचारों और कर्मों को परमात्मा में लगादो। ऐसा करने से तुम्हारी समस्त इच्छाओं का नाश होजावेगा। चित्त पूर्व अभ्यास के कारण बार २ पदार्थों की तरफ जावेगा परन्तु तुमको उसे हटाकर अपने लक्ष की तरफ करना होगा। आरम्भ में बड़ा द्वन्द्व युद्ध रहेगा परन्तु अन्त में यह भगवान् के चरण कमलों में शान्त होजावेगा।

९९६ उपनिषद् का अर्थ है किसी के समीप बैठ कर अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना। उप निकट, निषद् बैठना।

९९७ आत्म साक्षात्कार में सबसे भारी रुकावट तृष्णा है। सब प्रकार की तृष्णाओं का नाश करना चाहिए। तृष्णा के नाश होते ही निर्वाण की प्राप्ति अटल है। स्मरण रक्खो तृष्णा की जड़ बड़ी गहरी है। वह अनन्त शाखाओं में फैली हुई है। वह सूक्ष्म और छिपी हुई है। वह कारण शरीर में स्थित है खूब सावधानी से खोज करनी चाहिए।

९९८ ब्रह्मात्मैक्यम्—ब्रह्म और आत्मा की एकता वेदान्त शास्त्र का मौलिक सिद्धान्त है। प्रत्येक बाह्य पदार्थ को अलग करदो छिलके पर से छिलका उतार डालो तुमको अन्त में परमावश्यक और सत्य, सनातन, अमर आत्मा के दर्शन प्राप्त होंगे।

९९९ संसार तो दृश्य मात्र है तत्त्व पदार्थ तो आत्मा है। कोई इसे सार कहते हैं कोई पदार्थ। गुलाब के फूल का तुम कुछ भी नाम रक्खो उसमें गुलाब की सी मीनी और मीठी खुशबू आवेगी। यह सदैव अमर और एकरस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा है।

१००० बीमारी कर्मों की शुद्धि है। यह स्थूल शरीर के अतिथी है। यह आगमापायी है, आती है और चली जाती है। साक्षी बने हुऐ दृढ़ता से खड़े रहो। यह काली माता के मीठे सन्देश हैं।

१००१ हरि, ओ३म्, श्रीराम आदि परमात्मा के नामों का गुप्त जाप अत्यन्त बलवर्धक, और सब बीमारियों की राम बाण औषधी है। जप किसी अवस्था में भी किसी दिन भी बन्द नहीं होना चाहिए। जप आत्मा के लिए ऐसा ही है जैसा भूखे के लिए भोजन। ईसामसीह ने कहा है कि जो

करते और ध्यान करते जो अमृत वर्षा होती है उसको पीकर तुम जीवित रह सकते हो।

१००२ उपनिषद् में लिखा है "एकोहम् बहुस्याम" उसने चाहा मैं एक हूं बहुत होजाऊं। ब्रह्म के इस संकल्प से संसार उत्पन्न होगया।

१००३ यह सिद्धान्त कि आदि में कुछ नहीं था और संसार नेति से उत्पन्न हुआ है ग़लत है। यह पश्चिम वालों का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त कुछ अल्प बुद्धि के आचार्यों के विचार के लिये लोगों के सम्मुख उपस्थित किया है परन्तु यह तर्क के सामने टिक नहीं सकता। इसमें स्थिरता नहीं है सत् वह है जो नाम और रूप में प्रकट हुआ। असत् अर्थात् नाम और रूप से पूर्व जो अवस्था थी। यह अव्यक्त या अव्याकृत अवस्था है।

१००४ बुद्धि इस बातको मानती है कि यह संसार ऐसी शक्ति के आधीन है जिसमें ज्ञान है। इसका अधिष्ठाता उंगलियों के नाखूनों द्वारा इसमें प्रविष्ट होगया। वेद कहते हैं कि संसार सर्वशक्तिमान् परमात्मा की आज्ञानुसार उत्पन्न हुआ। छान्दोग उपनिषद् में लिखा है। अब मैं इन भूतों में प्रविष्ठ होकर नाम और रूप की शकल में प्रकट हूंगा।

१००५ सोते हुए आदमी को भिन्न २ नामों से पुकारो वह वह तुम्हारी आवाज़ को बिलकुल नहीं सुनेगा। इसका अर्थ यह है कि प्राण भोक्ता नहीं है। फिर सोते हुए पुरुष के कन्धे पर थपकी देकर उसे जगाओ, अब प्रथक् आत्मा जो कि प्राण से भिन्न है सुनकर उत्तर देगी।

१००६ सम्पत्ति, स्त्रियां, शिष्य, आश्रम और कीर्ति यह पांच संन्यासी के शत्रु हैं। जो इन पांच से बचते हैं वह अध्यात्मिक उन्नति करते हैं। अग्नि इतनी अधिक हानि कारक नहीं है जितनी कि लोहे की सलाख़ जो अग्नि में तपाई गई है। तुम अग्नि को हाथ से छू सकते हो। जो तम्बाकू पीते हैं वह अपने हाथ से अग्नि को छूते हैं और उन पर असर नहीं होता परन्तु तपी हुई लोहे की सलाख़ को हाथ से नहीं छुआ जा सकता। इसी प्रकार उस संसारी पुरुष का संग जो स्त्रियों के साथ रहता है स्त्रियों के संग से बुरा है।

१००७ अध्यात्मिक भिन्न २ हैं। ब्रह्म का चमत्कार अद्भुत है। ब्रह्म स्थिति भूमा है। जड़ भरत, दत्तात्रय, वामदेव, मंसूर, शमश तबरेज़ और सदाशिव ब्रह्म अपार और गहन ब्रह्म के समुद्र में कूद पड़े इसीलिये वह संसार में कर्म्म करने के योग्य नहीं रहे। शंकराचार्य ने समुद्र को केवल स्पर्श किया। उन्होंने उच्च सात्विक अंहकार को स्थित रक्खा, इसलिए वह मनुष्य समाज की अध्यात्मिक उन्नति के लिए कर्म्म कर सके।

१००८ स्वरूप का अर्थ है तुम्हारा असली सत चित् आनन्द स्वरूप जीवन का उद्देश अपने असली स्वरूप का साक्षात् करना है। अपने सत्य स्वरूप का अनुभव करलेना ही "स्वरूप साक्षात्कार" कहलाता है।

इसकी प्राप्ति विवेक और विचार द्वारा हो सकती है। विवेक सत्य, असत्य, स्थाई, अस्थाई, आत्मा और अनात्मा के भेद को कहते हैं। विचार सत्य की उस खोज को कहते हैं जिससे यह ज्ञान हो कि "मैं कौन हूं" मेरा असली स्वरूप क्या है? आत्मा और ब्रह्म क्या है?

विवेक और विचार द्वारा अपनी असली और वास्तविक आत्मिक स्थिति और स्वभाव को पहचानो। संशय भावना, असम्भावना और विपरीत भावनाओं को बिलकुल दूर करदो, यह ज्ञानअभ्यास है सहज अवस्था में स्थिर रहो और ज्ञान और अभ्यास के फल को भोगो, तुम स्वयं जीवन्मुक्त हो। जो अमर है उसका आदि नहीं हो सकता इसलिए ब्रह्म या सत्य अनादि है।

ईश्वर प्रार्थना

त्रिभंगी छन्द

[ले०—श्री आत्मानन्दजी सरस्वती]

जय जय जगकर्ता, सब दुख हर्ता, दीन बंधु असुरारी।
जय जय जन रक्षक, भव भय भक्षक, तूही कृष्ण मुरारी॥
तुझको जो भजते, भवसे तरते, नरदुख भंजन हारी।
पावन से पावन, शोक नशावन, तूही राम अवतारी॥

तेरे गुण गाते, सब कुछ पाते, ब्रह्मानंद समाते।
तुझ को नहिं भजते, जगमें फिरते, रहते दुःख उठाते॥
तू अज अविनाशी, घट घट वासी, बाहर भीतर माहीं।
तू अलख अगोचर, सुबुद्धि गोचर, देव पार नहिं पाहीं॥

तू विश्व समाया, वेदन गाया, ऋषिमुनि तुझको पाते।
तू अचल अनामा, पूरन कामा, विद्वत जन सब गाते॥
है तूही ध्याता, तूही ज्ञाता, ध्यान ध्येय बनिजाई।

है अज अद्वैता, होय न दैता, भावे नहिं कहिजाई॥
है सबका स्वामी, अन्तर्यामी, वेद भेद नहिं पाते।
है अपरंपारा, सबसे न्यारा, सबही शास्त्र बताते॥
है आप अदृष्टा, सबका दृष्टा, ज्ञान ज्ञेय बन जाता।
भक्तन प्रति पालक, दुष्टन घालक, परानंद का दाता॥

शरणागत होते, दुखको खोते, तुझमें ही मिलजाते।
अविचल पद पाते, नहिं भरमाते, लौटि न जगमें आते॥
तूही त्रिपुरारी, हे कंसारी! का विधि तोहि मनाऊं।
सब जग उपजाया, तेरीमाया, किसका भोग लगाऊं॥

है तू श्वेताम्बर, तुही दिगम्बर, सबका आधारा।
गो द्विज हितकारी, हे कामारी! लेता तू अवतारा॥
है तूही अत्ता, तूही भर्ता, होय विष्णु जग पाले।
ब्रह्मा जग कर्ता, शिव संहर्ता, हो तू जगकूं घाले॥

सब माहिं समाया, है बिन काया, ज्यों घट में आकाशा।
सबका तू कर्ता, सदा अकर्ता, ज्यों सूरज परकाशा॥
बिनु [वाणी बोले कर बिन तोले, बिनमुख सब कुछ खाता
जो खोज लगावे सोलखि पावे, तुझमें ही मिलजाता॥

जय जय सुख कारी, त्राहि मुरारी, कहेलगि विनती कीजै।
शरणागत वत्सल, हे प्रभु निष्कल! निश्चल भक्ति दीजै॥
आत्मा का आत्मा, तूहि सदात्मा, नेति नेति गाई।
आत्मा तू भजरे, सबको तजरे, आत्मानंद सदाई॥

जीव गुसाँई जी

जिन लोगों ने विषय वासना की तरफ से अपने मन को हटाकर भगवान् की तरफ नहीं लगाया है, जिनको आध्यात्मिक मार्ग में कुछ अनुभव प्राप्त नहीं हुवा है, जो अपने हृदय में स्थित भगवान् की तरफ कभी प्रेम भरी दृष्टि से नहीं देखते हैं, जो हानि लाभ से ऊंचे होकर चित्त को सांसारिक पदार्थों से खींच कर एक क्षण के लिये भी उस अनन्य प्रेम सागर की तरफ नहीं लगाते हैं, वह सुने हुये या पढ़े हुये ज्ञान के आधार पर भले ही यह बात कहदें कि भगवान् तो सब जगह मौजूद है, परन्तु उसके ज्ञान से वह लोग सर्वव्यापक भगवान् की स्थिति से कुछ आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते और उनका यह ज्ञान केवल इतना ही फल दायक है जितना दिल्ली में बैठे हुये मनुष्य का यह ज्ञान कि अनार काबुल में होते हैं। भगवान् सब जगह मौजूद हैं, यह बात अक्षरशः सत्य है, और इस से भी अधिक सत्य यह है कि भगवान् हमारे हृदय में स्थित हैं और हमारा हृदय हम से अत्यन्त निकट है परन्तु भगवान् का प्रकाश भक्त के हृदय में ही होता है। और यही बात अनुभूत सत्य है कि भगवान् भक्त के हृदय में वास करते हैं। यदि इस बात को और भी अधिक स्पष्ट किया जावे तो कहा जा सकता है कि भगवान् भक्त के वश में हैं। इन्हीं भक्तों के द्वारा संसार भगवान् की महिमा जानता है, इस को पहिचानता है और उस आभा का रसास्वादन करता है।

जीव गुसाई जी इसी भान्ति के भक्त थे। वह पूर्ण वैराग्यवान् और शान्त थे, बड़े विचार शील तार्किक थे। गूढ से गूढ विषय को बड़ी सरलता से समझाने में सिद्ध थे और इन की वाणी में भी इतना माधुर्य था कि जो सहृदय पुरुष एक बार उनके उपदेशामृत का पान करलेता था उसको ही भगवान् के चरणों में प्रीति हो जाती थी। यदि यह कहा जावे कि रूप सनातन जी वृन्दावन की भूमि को चिताने वाले थे और जीव गुसाई जी उस के बनाने वाले थे तो अत्युक्ति न होगी।

वह भगवान् की उपासना माधुरी भाव से करते थे और इस चरित्र और लीला को परम तत्त्व और सार जानते। यह रूप सनातन जी के भतीजे थे, घर में बड़े धनाढ्य थे। अपने दोनों चाचा के त्याग करने का इनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जबसे रूप सनातन जी घर बार छोड़ कर त्यागी हुये थे वह बराबर संसार असारता के बारे में विचार किया करते थे। धीरे २ इनका वैराग्य परिपक्व हो गया और यह समस्त वैभव का मोह छोड़ कर वृन्दावन की तरफ चल पड़े, वहाँ रूपसनातन जी के दर्शन किये। उस समय इनके शरीर पर रेशमी वस्त्र था। रूप जी ने हंस कर कहा कि नाम तो वैराग्यवान् और वस्त्र ऐसे। गुसाईं जी ने इन वस्त्रों का

परित्याग करके जमुना के किनारे जङ्गल में पर्ण कुटी बनाई और दृढ आसन जमा कर भगवान् माधुरी मूर्ति के ध्यान में लग गये। एक दिन रूपजी का उधर जाना होगया कि जहां पर जीव गुसाँई थे। वह गुसाँई जी के भक्ति भाव को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये और उनको अपनी छाती से लगा लिया फिर उनको अपने पास रख कर सब शास्त्र पढ़ाये, और भगवान के चरित्रों के कीर्त्तन करवाये। गुसाईं जी ने शास्त्रों की कथा और कीर्तन का इतना प्रचार किया कि देश भर में इनकी ख्याति होगई।

एक समय बादशाह अकबर ने इनको इस निर्णय के निमित्त बुलाया कि "गंगा और यमुना के बीच कौन बड़ी है। यह रात्रिको वृन्दावन के अतिरिक्त कहीं निवास नहीं करते थे, इस कारण एक तेज चलने वाले घोड़ों की गाड़ी इनकी सवारी के लिये भेजी गई। और एक पहर में इनको वापिस भेजने का वचन दिया गया। दरबार में पहुंच कर इन्होंने यमुना जी का ऐसा प्रभावशाली और युक्ति संगत वर्णन किया कि किस को बोलने का अवसर ही नहीं रहा। साथ ही यह भी कहा कि इस थोड़े से विचार के निमित्त हम को बुलाने की क्या आवश्यकता थी, कोई पुराण देख लिया होता सब स्थानों में यही निर्णय मिलता कि "गंगा जी उस पूर्ण ब्रह्म का चरणामृत है और यमुना उनकी पटरानी। यह उपासना और सिद्धान्त की परिपक्व अवस्था का फल है। अपने इष्ट के प्रेमी को उसकी सब वस्तुएं संसार में सर्व श्रेष्ठ और आनन्द दायक प्रतीत होती हैं।

अकबर इस निर्णय को सुन कर बहुत प्रसन्न हुवा और विनय की कि कुछ सेवा के निमित्त आज्ञा हो। गुसाईं जी ने उत्तर दिया कि 'किसी चीज की आवश्यकता नहीं है। जब बादशाह ने बार २ आग्रह किया तो बोले "पुराण स्मृति आदि समस्त ग्रन्थ काशी आदि स्थानों से मंगाकर श्री वृन्दावन में इकट्ठे करदो" अकबर ने शीघ्र ही आज्ञा का पालन कर सब ग्रन्थ मंगवादिये।

अकबर बादशाह जब रूप सनातन जी के दर्शन करने वृन्दवन में गया तो चलते समय गुसांई जी से स्थान बनवाने को कहा। गुसांई जी से स्थान बनवाने को कहा। गुसांई जी ने कहा कुछ आवश्यकता नहीं है। जब बादशाह ने बार २ कहा तो उन्होंने कहा पहले हृदय की आंखों से श्री वृन्दावन की सजावट देखलो पीछे स्थान आदि बनवाने का निश्चय करना। जब बादशाह ने आँख बंद करके देखा तो पृथ्वी, मन्दिर कुञ्जे आदि मणियों से जटित सुवर्ण के दिखाई दिये कि जिन से नेत्र झपे जाते थे। तथा दूसरी सामग्री इस प्रकार देखी की जो कभी ध्यान में नहीं आई थी, तब चरणों में गिरकर विदा हुवा।

रूप सनातन जी ने दुर्गा जी का एक मन्दिर प्रकट किया था उस की पूजा का भार गुसाँई जी को सौंप दिया था। गुसांई जी बड़ी श्रद्धा भक्ति से मंदिर का काम करने लगे। पीछे से आमेर के राजा मानसिंह ने गोविन्द जी का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया।

जीव गुसांई जी की यह रीति थी कि जो कोई उनकी भेंट पूजा के लिये कुछ लाता था उसको यह यमुना जी में डलवा देते थे और अपने पास कुछ नहीं रखते थे। एक सेवक ने एक दिन साहस करके विनती की कि महाराज यदि यमुना जी में डालने की बजाय इस सामग्री से साधु सेवा हो जावे तो अधिक लाभ दायक हो। इस पर गुसांई जी बोले भाई तुम लोगों में कोई साधु सेवा करने के योग्य नहीं दीखता। इस पर एक शिष्य ने हाथ

जोड़ कर प्रार्थना की यदि दास के लिये आज्ञा होवे तो इस सेवा के कार्य में प्रवृत होजावे। तब गुसांई जी ने प्रसन्नता से आज्ञा देदी। उसने सेवा का काम सम्भाल लिया एक रात्रि जो एक साधु चला आया वह बहुत भूखा था उसने उस भण्डारी से भोजन मांगा परन्तु वह दिनभर काम करके बहुत थका हुआ था। और उस समय सोने को गया था क्रोध करके बोला "इस समय भोजन कहां रक्खा है। प्रभात को भोजन मिलेगा, इस पर भूखे साधु ने कहा मुझे बड़ी भूख लग रही है। बस फिर क्या था, भण्डारीजी के भण्डार की अग्नि प्रज्वलित होगई। क्रोध करके बोला "यदि बहुत भूख लग रही है और तुम से सन्तोष नहीं होता तो मुझे खा ले" गुसांई जी यह बातें सुन रहे थे प्रातः काल बुला कर सब बात पूछी और कहा कि भाई क्या साधुओं को आदमी खाने वाले की उपाधि देने के लिये साधु सेवा स्वीकार की थी? गुसांई जी ने रूप जी के कहने से श्री गोविन्द देव जी की सेवा पूजा ग्रहण की बहुत काल तक सेवा करने के पीछे जब एक शिष्य की श्रद्धा भक्ति की सब प्रकार से परीक्षा करली तो मन्दिर की सेवा का काम उसको सौंप कर आप वृन्दावन के कुञ्ज वनों में वास करने लगे हर समय भगवान् के रूप में मस्त और बेसुध रहते थे। जीव गुसांई जी के भक्ति प्रचार से श्री वृन्दावन की बड़ी ख्याति हुई और उनके उपदेशों से हजारों आत्माओं को परमार्थ की राह मिली।

भजन

मदन मोहन कृपा करके मिटा आवागमन मेरा।
लगादे पार बेड़े को कि तू तारन तरन मेरा ॥ टेक ॥
तू है मेरा मैं हूं तेरा न तुझबिन जगमें कुछ मेरा।
न घर मेरा न दर मेरा न मन मेरा न तन मेरा ॥
वह सूरत श्याम छवि बांकी वह मतवाली सीहैं चितवन
उसी बस एक अदापर अबहुवा मोहित यह मन मेरा
मुझे है प्यास दर्शन की पिलादे रूप रस मोहन।
पुजारी हूं तेरा मोहन तू प्रेमी है मदन मेरा ॥
तू राधेश्याम में भी है तू सीताराम में भी है।
तू मुझ में भी है ऐ मोहन बना है आलोधन मेरा ॥
घटा में तू छटा में तू तुही बस्ती में जंगल में।
नजर आता है तू ही तू इसी से चित मगन मेरा ॥
मैं भीगा भक्ति के रस में रमा तू मेरी नस नस में।
मैं तेरे होगया बस में जिमा अब तू परन मेरा ॥
मेरी इच्छा है जीते जी न हो झूठा बचन मेरा।
हुआ झूठा बचन मेरा तो सचमुच है मरन मेरा ॥
तेरी मुरली की धुन सुनकर मैं मिस्ले मोर नाचत हूं।
तेरी महिमा को गाकर सफल होता दहन मेरा ॥

मुझे पहुंचादे मथुरा में या वृन्दावन की गलियों में।
गरज तो यह कि जो तेरा वही हो बस वतन मेरा ॥
मुझे दीवाना कहता है कोई पागल बताता है।
मैं खुश हो हो के सुनता हूं यही है बस चलन मेरा ॥
तेरे परताप से माखन मलाई दूध खाता हूं।
बदन में आगई ताकत बढ़ा इससे वजन मेरा ॥
मैं हरदम मस्त रहता हूं कहे जाता हूं नारायण।
अगर कुछ काम है तो है सिरफ भोजन भजन मेरा ॥
मुझे भोजन भजन की ही लगन है रातदिन मोहन।
इसी से नाम मित्रों में पड़ा भोजन भजन मेरा ॥
अदब के साथ यह अर्जी तेरी सरकार में मोहन।
खड़ा हो तू मेरे सन्मुख कि जिसदम हो मरन मेरा ॥
तेरी ही ज्योति का घनश्याम सब जगमें उजाला है।
दिखाई दे रहा क्या साफ अब मोहन मदन मेरा ॥

२

मेरे शंभु तू लीजे खबरिया मेरी,
बीती जाती है सारी उमरिया मेरी ॥ टेक ॥
जटा में गंग बहे पाप नाश दुःख हरनी।
करे है मोक्ष सबों को आप वयतरणी।
इसी से नाम तेरा जगत में तारन तरणो,
इसी द्वारे पै कीजे तू मुक्ति मेरी ॥ १ ॥
माथे पै चन्द्र तिलक तीन नेत्र साजे हैं।
डमरु भी हाथ लिये नन्दी पर विराजे हैं,
दरस के देते ही सब दुःख दूर भाजे हैं;
मोहे लागे पियारी सुरतिया तेरी ॥ २ ॥
गले में है तेरे रुंड मुंड की माला।
बिछाये बैल पर हो सिंह की छाला,
बस तुम्हीं से लगी है नजरिया मेरी ॥ ३ ॥
बगैर हुकम पत्ता भी नहीं हिलता।
बिना दर्श तेरे मन कमल नहीं खिलता।
चाहे सेवक तो सीधी डगरिया तेरी ॥ ४ ॥

३

देश भारत की जो हालत आ मुरारी देखले।
याद करते है तुझे तेरे पुजारी देखले ॥ टेक ॥
धर्म के वक्ता ऋशी मुनि व्यास भीषम चल बसे।
रह गये हैं अबतो नकली धर्म धारी देखले ॥ १ ॥
इन्द्र का हिलता था आसन जिनके तपके जोरसे।
आज वो फिरते हैं ब्राह्मण अब भिखारी देखले ॥ २ ॥
करते थे गौवों की सेवा तेरे बनतों में सभी।
अबतो गर्दन पै है चलती नित कटारी देखले ॥ ३ ॥
मारती पतियों के जूते देवियां पैदा हुई।
द्रौपदी सीता के बदले आज नारी देखले ॥ ४ ॥
वेद विद्या को पढ़े थे हवन करते थे सभी।
आज उर्दू और अंग्रेजी की बिमारी देखले ॥ ५ ॥

४

कौन होता है किसी का दम निकल जाने के बाद।
खाक रह जाती है बाकी जिस्म जल जाने के बाद ॥टेक॥
चंदरोजा जिंदगी है होश कर गाफिल जरा।
सब पते मालूम हों दोजख में मिलजाने के बाद ॥१॥
इस तरह दुनियां में हो जैसे बतासा आब में।
कुछ पता रहता नहीं पानी में गल जाने के बाद ॥२
सैकड़ों गम खवार जोबन पर हजारों दिलरुबा।
रात दिन रोया करेंगे आपके जाने के बाद ॥३॥

५

सब दिन गये विषय के हेत ॥ टेक ॥
तीनोंपन ऐसे ही खोये केस भये सिर श्वेत ॥
सुनै न श्रवण नैन नहीं सूझै थाके चरण समेत।
रुंध्यो कंठ बात नहीं आवैं चंद गह्यो ज्यों केत ॥
तजि गंगोदक पियत कूप जल हरि तज पूजत प्रेत।
सूरदास कछु खरच न लागत कृष्णनाम मुख लेत ॥

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य ॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,, ।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ
४.	वेदोपनिषद्	।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,, =)।
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,, =)॥।
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,, =)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,, =)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,, ॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,, =)॥।
११.	शब्द सार संग्रह	,, =)।
१२.	शब्दसंग्रह	,, =)॥
१३.	सारसंग्रह	,, ।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,, ।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,, =)।
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,, ॥=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,, ॥=)
१८.	भगवदंक	,, ॥।)
१९.	गर्गांक	,, १)
२०.	महात्मांक	,, १)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।